श्री रामोविजयतेतराम्
श्रीमते भगवते रामानन्दाय नमः

जगद् गुरु रामानन्दाचार्य सप्त शताब्दी महोत्सव के अवसर पर

श्री सम्प्रदायाचार्य दर्शन

लेखक

श्रीरामकथाके दिग्विजयी व्यास तथा गीता उपनिषद्
ब्रह्मसूत्र भाष्यकार श्रीसम्प्रदायमंथनादि
दिव्य ग्रन्थों के प्रणेता अनन्त श्री विभूषित
रामानन्दाचार्य पूज्यपाद स्वामी हर्याचार्य जी महाराज
भगवान के सान्निध्य में

प्रकाशक

स्वामी हर्याचार्य प्रकाशन
श्री हरि धाम पीठ
रामघाट, अयोध्या-२२४१२३
(उ.प्र)

प्रकाशन तिथि

ज. गु. रा. स्वामी
भगवदाचार्यजयन्ती
लाभपंचमी
सन् १९९९

प्रति १०००
मूल्य : रु. ५०.००

सम्पादक

आचार्य स्वामी राम देव दासजी शास्त्री
व्याकरण वेदान्ताचार्य

मुद्रक

साधना प्रिन्टरी,
घी कांटा, अमदाबाद। फोन : ३८४५०२

प्राप्तीस्थान

श्री हरिधामपीठ गोपालजी मन्दिर रामघाट, अयोध्या।

स्वामी भगवदाचार्य आश्रम
सैजपुर, नरोडा रोड,
कर्णावती(अहमदाबाद)३८२३४५

श्री सम्प्रदायाचार्य दर्शन
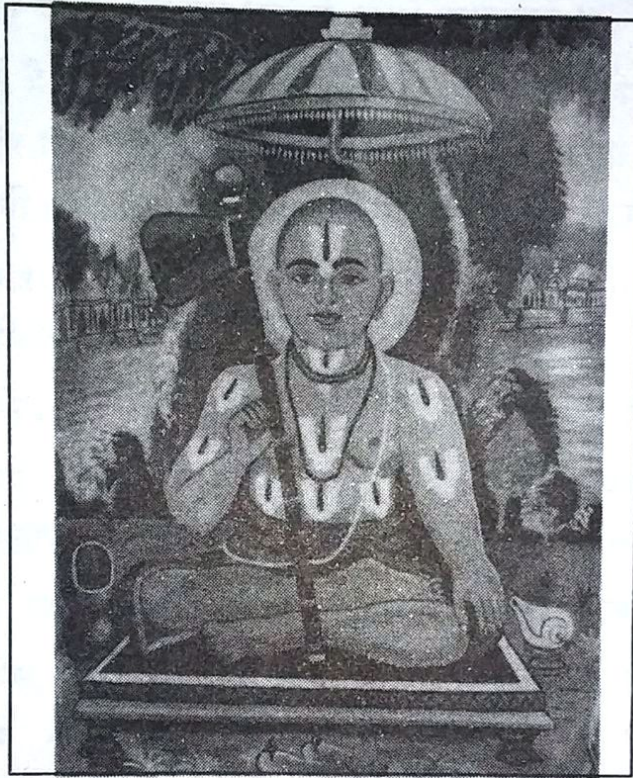
हिन्दू धर्मोद्धारक सामाजिक समरसता के संस्थापक
भारतराष्ट्रके रक्षक मानवता के परम उन्नायक
जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज

-: लेखक :-

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी श्रीहर्याचार्य अयोध्या

उपायनम्

पूर्वाचार्यान्नमस्कृत्य तदुक्तीः परिभाव्य च ।
(श्री) स्वामि हर्याचार्यपर्यन्तं दर्शनं प्रकाश्यते ॥

धर्म के दो रूप होते हैं - सत्य और त्याग । इससे संयुक्त पुरुषको आदर्शवान् वा धर्मात्मा कहा गया है । इस सत्य और त्याग के आचरणकर्ता और कारयिता वस्तुतः मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम हैं । श्रीरामायणका मारीच भी उनको धर्मका साक्षात् विग्रह मानता है– **रामो विग्रहवान् धर्मः ।**

लोकाभिराम श्रीराम धर्म के सभी लक्षणोंसे समन्वित हैं । लोकशिक्षणके लिये ही उनका मर्त्यावतार है, राक्षसवधके लिये नहीं-

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षो वधायैव न केवलं विभोः ।

जो सर्वभूतान्तरात्माके रमणीय तत्व हैं, भला उन्हें श्रीसीतावियोगजन्य व्यसन कैसे हो सकता है । श्रीमद्भागवत महापुराणके पञ्चमस्कन्धमें परमभागवत श्री हनुमान्‌जी कह रहे हैं–

कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व-आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

वे अपने जीवनके प्रेम, दया और सुखका भी परित्याग कर सकते हैं, आवश्यकता हो गयी तो प्राणप्रिया श्रीजानकीजीका भी त्यागकर सकते हैं । लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको सीतात्याग भी व्यथाकारक नहीं होता है । श्रीभवभूतिके शब्दोंमें–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

अपने आचरण द्वारा मनुष्योंको शिक्षा देनेकेलिये उनका चार रूपोंमें अवतार हुआ है–

स्वाचारमुखेन मनुष्यान् शिक्षयितुं चतुर्धावततार । -वा० रा० भूषणटीका

इस अर्थमें श्रीरामजी शाश्वत जगद्गुरु हैं ।

जगद्गुरुं च शाश्वतम् । श्रीरामचरितमानसमें अत्रिवचन ।

रघुनाथं जगद्गुरुम् । श्रीरामस्तवराजमें श्रीसनत्कुमार ऋषिने कहा है ।

वर्तमानमें इस लोकमें सम्पूर्णचरित्रसे युक्त कौन है ? यह देवर्षि नारदजीसे मुनिश्रेष्ठ श्रीवाल्मीकिजीकी प्रथम जिज्ञासा है–**चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।**

मानवजीवनमें चरित्र ही सर्वोपरि है, यही श्रीराम और रावणमें भेद है ।

शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है कि आचरणहीन मनुष्यको वेद कभी पवित्र नहीं करते हैं– **आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ।**

इस प्रकार विश्रवापुत्र रावण अनुपम वैदिक भाष्यकार था । त्रिभुवनविजयी और स्वर्णमयी लंकाका स्वामी भी था, किन्तु चरित्रभ्रष्ट होनेसे वह राक्षस कहा गया, अतएव सदा रामने ही रावणका वध किया है । इसीके संस्मरणमें विजयादशमीको प्रतिवर्ष रावणका पुतला जलाया जाता है ।

इसी अर्थमें **श्रीसम्प्रदायाचार्यदर्शन** और **जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्य सप्तशताब्दी** महोत्सवकी प्रासंगिकता है ।

श्रीरामानन्द सम्प्रदायका दार्शनिक और **व्यावहारिक** पक्ष निम्नाङ्कित है ।

दार्शनिक पक्ष–

श्रीसम्प्रदायके नवें आचार्य श्रीबोधायनस्वामीने ब्रह्मसूत्रव्याख्यानात्मिका **श्रीबोधायन** वृत्ति ग्रन्थमें श्रीमद्विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की है । जिसका अर्थ है–**वटबीजन्याय** के अनुसार श्रीमद्विशिष्टाद्वैतरूप परात्परतत्व श्रीराम हैं । वे ही जगत् और जीवके उपादान और निमित्त कारण भी हैं । श्रीवैष्णव दर्शनमें माया, जीव और ब्रह्म ये तीनों नित्य हैं, सूक्ष्म और स्थूल अवस्थामें भी । दुर्लङ्घनीया मायाके जालसे छूटने का सर्वसुलभ उपाय भगवत्शरणागति ही है, यही समस्त भारतीय धर्मग्रन्थों का कथन है ।

इसके विशेष अध्ययनहेतु इस ग्रन्थके उत्तरार्धमें श्रीसम्प्रदायमन्थन के विशेष लेख **विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तविमर्श** आदि संगृहीत हैं, उसका अवलोकन करें ।

व्यावहारिक पक्ष–

प्रस्तुत ग्रन्थमें जिन श्रीसम्प्रदायाचार्योंके जीवनदर्शनका परिचय प्राप्त हो रहा है, उससे यह सिद्ध हो रहा है कि सनातन-धर्म के संरक्षण, सम्बर्धन और स्वकीयजीवनमें उसके पालनमें इन महापुरुषों का बहुत योगदान निहित है ।

श्रीरामभक्ति और राष्ट्रभक्ति की एकता को सिद्ध करते हुए हमारे श्रीरामानन्दीय वैरागी सन्तोंने भारतमाता की वेदी पर अपने त्याग, तपस्या और ईश्वराराधन को समर्पित कर यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रभक्ति में भी हम सबसे आगे हैं ।

समर्थगुरु रामदास, वीरवन्दावैरागी के बलिदानी इतिहास को देखो । पण्डितराज स्वामी

भगवदाचार्यजी के **साबरमती आश्रमकी सेवा** और **भारतपारिजातम्** महाकाव्य को देखो और वर्तमान में भी उनके अनुयायियों-कर्मवीर स्वामी रामकुमारदासजी, श्रीमहान्त स्वामी रामलखनदासजी (श्रीगुमानदेवपीठ-भरुच) आदि को देखो । बाबा राघवदासजी, महान्त भगवानदासजी खाकी, ब्रह्मचारी वासुदेवाचार्यजी, अक्षय ब्रह्मचारीजी, तथा श्रीमहान्त रामकृष्णदासजी (कंजरी-गुजरात) आदि महानुभावोंने आजादीके आन्दोलन के समय जो देशसेवा की है, उसे भुलाया नहीं जा सकता है ।

प्रकृतमें, चौदहवीं शताब्दीके भक्ति-आन्दोलनमें अग्रणी भूमिका निभानेवाले स्वामी रामानन्दाचार्यजीने बिना रक्तपात कराये, मात्र प्रेमास्त्रसे भारतमें हिन्दुधर्मका पुनरुद्धार किया । सामर्थ्यवान् होनेसे उन्होंने उस युगका प्रतिनिधित्व किया । धर्मके निर्गलित तात्पर्य श्रीरामभक्ति-शरणागति का द्वार मानवमात्रके आत्मतोषकेलिये खोल दिया । विश्वके सभी धर्माचार्योंमें यह उनकी अपूर्वता निर्विवाद सत्य है ।

आज यदि विश्वके मञ्चपर यह प्रश्न किया जाय कि भारतमें श्रीरामानन्द सम्प्रदायका क्या योगदान है ? तो हम स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं–**स्वामी रामानन्दजीने मानवसमाजके उस अन्तिम व्यक्तिको हृदयसे लगाया, जिसका नाम रविदास है, पद्मावती है । उस फक्कड़को भी अपने द्वादश पट्टशिष्योंमें स्थान दिया, जिनका नाम कबीरदास है ।** स्वामीजीने तत्कालीन वर्णाभिमानियोंकी परवाह नहीं की । इस साहसपूर्णकार्य से सामन्तवादकी नींव हिल गयी थी ।

वर्तमानमें भी देखो ! हमारे श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें सीदप्रसादीको पाने (खाने) की प्रथा है । हम सन्त और भगवान्में अन्तर नहीं मानते हैं । जैसे मन्दिरमें प्रतिष्ठित अर्चावतार श्रीशालग्राम भगवान्के चरणोदक पीते हैं, और वेदमन्त्रों द्वारा अर्चित-चर्चित श्रीचरणारविन्दका हम प्रसाद (उच्छिष्ट) पाते हैं, उसी प्रकार पंक्ति (पंगत) में विराजमान सन्त समूहके चरणोदक का हम पान करते हैं और उन सन्तों से उनकी सीदप्रसादी मांगकर खाते हैं । यह हमारा व्यावहारिक दर्शन है कि सन्तोंकी शीदप्रसादीके बिना मुक्ति हो नहीं सकती है । यह केवल इतिहास ही नहीं हमारा वर्तमान भी है ।

जैसे हमारे भगवान् वामन और परशुराम भी बन जाते हैं । पृथिवीके उद्धार हेतु वाराह भी बन जाते हैं । कभी बुद्ध और कभी महावीर स्वामी भी बन जाया करते हैं, किन्तु उनकी नित्यपावनतामें कोई अन्तर नहीं आता है, उसी प्रकार भजनानन्दी विरक्त साधुका अच्युत गोत्र

होता है । क्योंकि शरीरके गोत्रसे वह ऊपर उठ जाता है । हमारे यहां कहा जाता है-**भेष भगवान का** । यही है **सीयराममय सब जग०** ।

है, विश्वके किसी सम्प्रदाय अथवा पन्थमें ऐसी उदारपूर्ण समानता ! जहाँके रविदास का भी मनचंगा हो गया हो ?

इसी प्रभुताके कारण तत्कालीन विधर्मी हतप्रभ हो गये थे । बड़ी संख्यामें जो हिन्दुत्वकी लहर दौड़ पड़ी थी । सारे भारतवर्षके जन-जनके - परस्पर अभिवादनमें **जय रामजीकी** जो गूँज व्याप्त हो गयी थी, उसके कारक हैं -**कलिपावनावतार जगद्‌गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यजीमहाराज** ।

यही है देशभक्ति और यही है देशके सर्वतोमुखी विकास का मन्त्र ।

वर्तमान के राजनेताओंको इस ओर ध्यान देकर कुछ सीखना चाहिए ।

अन्तमें मैं गुजरातकी इस भक्ति भूमिको नमन करता हूँ, जहाँ कि–

(श्री) रणछोड़रायं प्राप्य बृद्धापि तरुणायते ।

जगद्‌गुरु भगवान् श्रीद्वारकाधीशजीने यहीं से विश्वशान्तिकी स्थापना की थी । **सिद्धानां कपिलो मुनिः** की जन्मभूमि यहीं है । छपिया (छपैया-गोण्डा) से पधारे श्री सहजानन्दजी यहाँ आकर **स्वामी नारायण भगवान्** के रूप में पूजित हैं । वर्तमानमें यह प्रान्त हमारे त्यागी-विरागी श्रीरामानन्दीय संतोंके श्रीरामभक्तिके प्रचारका लगभग केन्द्र बन चुका है । पूज्यचरण श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज, और श्री स्वामी वैष्णवाचार्यजी महाराज आदि महापुरुषों की प्रतिभालक्ष्मी के द्वारा श्रीरामानन्द साहित्यके अक्षयकोषकी जो स्थापना हुई वह इसी भूमिकी देन है । राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और सरदार पटेल जैसे त्यागी और लौहपुरुष गुजरातकी धरती पर पैदा हुये । स्वामी रामानन्दाचार्यजीकी चरणपादुका यहाँ के सह्याद्रि (गिरनारपर्वत) पर स्थापित है ।

मेरी दृष्टिमें वर्तमान में इस भूमिमें सबसे बड़े भाग्यशाली लोकसन्त कर्मवीर स्वामी रामकुमारदासजी (खाकी बापू) महाराज हैं जिनके रोम-रोम में श्रीरामभक्ति और श्रीरामानन्दीयत्व समाहित है । परमहंस परिब्राजकाचार्य सारस्वत सार्वभौम श्रीस्वामी भगवदाचार्यजीसे लेकर वर्तमान सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज तकके विजयध्वजको लेकर सबसे आगे हनुमान्‌जीकी तरह चलने वाले इन ८० वर्षीय महापुरुषके दर्शन कर मेरी आँखें कृतज्ञता से नम्र हो जाती हैं । ऐसे श्रीरामकार्यमें समर्पित सन्तकी अनेक उपलब्धियों को व्यक्त करके मैं इनसे उत्रृण (ऋणहीन) नहीं होना चाहता । मैं तो हृदयस्थ श्रीकौशल्यानन्दवर्धन श्रीरामललाजीसे यही याचना कर रहा हूँ

कि ऐसे संतचरणों के रजः कण मेरे मस्तिष्क को पवित्र बनाये रखें ।

महान्त श्रीस्वामी गंगादासजी महाराजके प्रधान शिष्य पं० श्री पवनकुमारदास शास्त्रीजी, जो विद्वान्, गम्भीर और व्यवहारकुशल सन्त तथा श्रीस्वामी भगवदाचार्य आश्रम (अहमदाबाद) के व्यवस्थापक महांत हैं । इन्होंने अपने व्यस्तसमयमें से सुन्दर अक्षरोंमें इस ग्रन्थकी मुद्रण प्रतिलिपि (प्रेस कापी) तैयार करके जो हमें सहयोग दिया है उसके लिए मैं इनके उज्जवंल भविष्य के प्रति श्रीसीतारामजीसे सदैव प्रार्थी हूँ ।

पूज्य श्री खाकीबापूजीके निर्देशनमें इसकी रूपरेखाका सृजन हुआ है । प्रूफशोधन आदिमें जो त्रुटि रह गयी हो, उसकेलिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ–त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

–जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यचरणाश्रित रामदेवदास

सम्पादक - अवध सौरभ (मासिक)

अयोध्याजी

दिनांक : १७-८-९९

भूमिका

अनन्त श्रीविभूषित काशीपीठाधीश्वर
प्रस्थानत्रय भाष्यकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामी हर्याचार्यजी महाराज

भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यका भव्य शताब्दीमहोत्सव मनाया जा रहा है, यह श्रीरामजीकी अविरल कृपा है । यह संसार परिवर्तनशील है, जन्म-मरण प्रधान है । जिसके जन्मसे इस संसार को कोई भी विशिष्ट संबल मिला है, समाज में शान्ति, ज्ञान, प्रेम, एकता, मानवता, भक्ति और प्रपत्ति मिली है, उसका समस्त जीवन कृतार्थ है, उसका जन्म सफल है । जिसके जीवनसे किसी को लाभ नहीं हुआ, मानवता, प्रेम, दया और करुणा से द्रवित नहीं हुआ, जिसके नेत्र कभी नम नहीं हुये, कृपा की कोर से जिसके लोचनने गंगा नहीं बहायी उसका जीवन और मरण दोनों बराबर है । जयन्ती महोत्सव, अर्धशताब्दी महोत्सव या शताब्दी महोत्सव आदि उसी महान् विभूति का मनाया जाता है जिसने संसारके समस्त मानवजाति को कुछ दिया है । देना एक विशिष्ट महत्त्व स्थापित करता है । उन्हींमें स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज थे ।

उस काल में समस्त मानवता कराह रही थी । लोगोंने जीवनको इतना सकिस्त बना दिया था कि मानवजाति सिसकियाँ भरकर अपने घरमें शान्तप्राय हो चुकी थी । विधि-निषेधकी अठधर्मी मानव मनको निराश कर चुकी थी । हिन्दूजाति अपना स्वरुप भूल चूकी थी । भक्ति, प्रेम, उपासना और ज्ञान जर्जर होकर रोगग्रस्त हो चुका था । अनादि वैदिक श्रीरामानन्दसम्प्रदाय उन दिनोंमें अस्तित्वविहीन था । रामानन्दीयत्व का पहिचान नहीं रह गया था, ऐसे संक्रान्तिकालमें जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यका प्रादुर्भाव हुआ जो समस्त संसार को आलोकित किया ।

श्रीउदयनाचार्यकी एक झाँकी मनको झकझोर देती है । वे न्यायशास्त्र के विद्वान एवं परमभक्त थे । न्यायकुसुमाञ्जलिके वे कर्ता भी हैं ।

एक दिन उनकी इच्छा हुई कि जगन्नाथपुरी में जाकर भगवान् श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करूँ । ऐसा विचारकर उन्होंने अपने गृह श्रीमिथिलासे पदयात्रा प्रारम्भ कर दी । पुरी पहुँचनेमें उन्हें दो मास लग गये, जाकर वे मन्दिरके द्वार पर बैठ गये । सोचा कि आज मैं अपने श्रीजगन्नाथ स्वामीको ईश्वरसिद्धि सुनाऊँ, उससे भगवान् प्रसन्न होंगे । बहुत समय बीत गया, प्रभुका दर्शन नहीं हुआ, अतः क्रोधके वशीभूत होकर वे बोले–

ऐश्वर्यमदमत्तोसि मामवज्ञाय तिष्ठसि ।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः ॥

हे ईश्वर ! तुम मदमत्त हो गये हो, इसीलिये मुझ जैसे भक्तकी अवहेलना कर दर्शन नहीं दे रहे हो ! याद रखना ! एक वह समय आयेगा जब भारतमें बौद्धमतका साम्राज्य हो जायेगा, जनता अनीश्वरवादी होकर वेदनिन्दक हो जायेगी । तुम्हारा नाम लेना बन्द हो जायेगा, तब मेरी **ईश्वरसिद्धि** ही तुम्हारी रक्षिका होगी । वही समय स्वामी रामानन्दाचार्यजीके कालमें भी आ गया था । भगवान्के मन्दिरमें प्रवेश करनेमें लोगोंको भय और शंका हो रही थी । ऐसे समयमें स्वामीजीने घोषणा की– **श्रीरामकी वेदीपर बैठनेमें संसारका प्रत्येक प्राणी अधिकारी है । शक्त-अशक्त, दीन-मलीन-हीन चाहे वह कैसा भी क्यों न हो, भगवानकी शरणमें किसीका अवरोध नहीं है । इस आवाहन से स्वामीजीने भारतकी समस्त जनताको जगाकर भगवान्के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया ।**

भगवान्की भक्ति ही बलवती है, उसमें कुल, विद्या और बड़प्पन कारण नहीं है ।

वैसे हिन्दु धर्म में चार आगम स्वीकृत हैं । अनेक निगम हैं । छः दर्शन हैं । ऐसा एक भी सम्प्रदाय अथवा व्यक्ति नहीं है, जिसे सभी निगम-आगम मान्य हों । उदाहरण २४ अवतार हैं, किन्तु सबकी पूजा नहीं होती । स्वामी रामानन्दाचार्यने किसीका निषेध नहीं किया है । उनका यही समन्वय उनके पदपर प्रतिष्ठित करता है । इस दृष्टिसे उनका **सप्तशताब्दी महोत्सव** समाजका अमृतत्व है, जिसकी आज परम आवश्यकता है ।

इसी सम्प्रदायको सारस्वत सार्वभौम स्वामी भगवदाचार्यजी ऐसे मनीषीने गौरव प्रदान किया और अपना पूरा जीवन श्रीसम्प्रदायमें ही लगा दिया । विपुल साहित्य प्रदानकर वे श्रीजीके लिये रो गये । श्रीस्वामीजीने उपासनापरक वैदिकभाष्य किया । स्वतन्त्रग्रन्थ विशिष्टाद्वैतदर्शनको सूत्रशैलीमें लिखा । सत्यवतीनन्दन व्यासजीके पश्चात् श्रीस्वामीजीने ही इसको श्रेय प्रदान किया । जीवनके प्रत्येक पक्षको आपने छूने का प्रयास किया, जो स्वयंमें अद्वितीय है ।

इस प्रकार स्वामीजीके ग्रन्थ ही उनकी भक्तिके प्रतिपादक सिद्ध होते हैं । उनमें शुक्ल यजुर्वेदसंहिताके एक मन्त्रको प्रस्तुत करता हूँ–

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥

"तस्य पुरुषस्य परमात्मनः प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं तौल्यमिति यावत् । न अस्ति । तस्य

कस्येत्याह - **यस्य नाम महद्यशः** । यस्य पुरुषस्य नाम यशश्च महत् । यशसो महत्वे यत्कारणं भवति तदैव नाम्नोपि महत्वे । रामस्य रामेतिनामश्रवणमात्रेण हृदये परमानन्दस्फूर्तिः संजायते तत्र तद्यशः स्मृतिरेव कारणम् । नामश्रवणेन नामिन उपस्थितिर्जायते । नामिनि उपस्थितौ तस्य रावणादिदुष्टजनसंहाररूपं महत्कार्यमुपस्थितं भवति, तदेव यशः । **दानादिप्रभवा कीर्तिः शौर्यादिप्रभवं यशः** इत्यभियुक्तवचनम् । अत्रादिशब्दौ प्रकारार्थौ । हिरण्यगर्भ इत्येष इत्यादिकप्रतीकसमूहः प्रायेण व्याख्यातः स्वस्वस्थले" । **-श्रीस्वामि भगवदाचार्यः ।**

ऐसा भाष्य करके आचार्यश्रीने विश्वको चकित कर दिया ।

स्वामीजी कहते हैं–"उस परमात्माका कोई उपमान नहीं है, जिसका यश ही महत्त्वपूर्ण है। यशके महत्त्वमें जो कारण होता है उसके नामके महत्वमें भी वही कारण होता है । रामनामके श्रवणमात्रसे हृदयमें परमानन्दकी स्फूर्ति होती है । उस आनन्दकी स्फूर्तिमें रामके यशकी स्मृति ही कारण है । नामश्रवणसे नामीकी उपस्थिति होती है । नामीकी उपस्थितिमें रावणादि दुष्टोंके वधरूप महत्कर्मोंकी भी उपस्थिति होती है । यही यश है । दानादिके कारण कीर्ति उत्पन्न होती है, शौर्यादि से यश होता है, यही कीर्ति और यशका भेद है" ।

वस्तुतः यह प्रतिभा श्रीरामानन्दसम्प्रदायकी देन है । स्वामी भगवदाचार्यजी अलौकिक वेदभाष्यकार हैं । श्रीरामजीमें उनकी अगाधनिष्ठा है ।

रामायणमें जब श्रीरामजीका वनवास और श्रीजानकीजीके वनवास का प्रसंग आता है, उस समय इन बृद्धतपस्वीका हृदय करुणासे भर जाता है । आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगती है । वाणी रुक जाती है, जिह्वा लड़खड़ा जाती है और वार्तालाप बन्द हो जाता है । यह भक्तहृदय और साम्प्रदायिक प्रेम है । भगवान् और भगवतीके प्रति अनन्यता है ।

ऐसी विभूतिने श्रीसम्प्रदायको विभूषित किया है । इनके अनेक अनुपमग्रन्थ श्रीरामानन्द सम्प्रदायके धरोहर हैं ।

उन क़ालजयी जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यजी की सप्तशताब्दी महोत्सवकी संरचनाका आनन्द प्राप्त करना हम सबकी यह कृतज्ञता है । अपने पूर्वाचार्योंके जीवनदर्शनको हम समय-समय पर प्रकाशित करते रहें, व्यक्त करते रहें तो हममें निखार आयेगा । साकेताधीश भगवान् श्रीराम इस सम्प्रदायके ध्येय, ज्ञेय, श्रेय और प्रमेय हैं और रहेंगे ।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य सप्तशताब्दी महोत्सवके शुभ अवसर पर **श्रीसम्प्रदायाचार्य-दर्शन** ग्रन्थको आपकी सेवा में समर्पित करते हुये मुझे आनन्दका अनुभव हो रहा है । इस निरुपम श्रीसम्प्रदायके सिद्धान्त और ऐतिहासिक परम्पराकी वास्तविकता से आप पूर्णरूपसे

परिचित हों, यह मेरा विनम्र प्रयास है । इतिहासकारों और शोधार्थियोंको भी वस्तुस्थितिका पूर्णज्ञान होगा, जनसामान्यको भी । जनसाधारणतक स्वामी रामानन्दाचार्यका श्रीरामभक्तिआंदोलन और उनकी उदारतापूर्ण मानवीय सहृदयताका संदेश प्राप्त हो यही इस महोत्सवकी सार्थकता मानता हूँ ।

अन्त में मैं इस समारोह और प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रेरक खाकी बापू स्वामी रामकुमारदासजीको हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ, जिनके जीवन का सारतम भाग श्रीसीतारामगुणगान में व्यतीत हुआ है ।

सभी आचार्योंने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है । इस पक्षपर यदि विचार किया जाय तो कोई भी कहे बिना नहीं रह सकता कि ईश्वर काव्यरसिक है, छन्दप्रेमी है । सम्पूर्ण वेदोंको उसने छन्दोबद्ध ही रखा है । उसके ज्ञानमें पद्यके अतिरिक्त गद्यका स्थान न्यून है । अतः कहा जा सकता है कि भगवान् परम रसस्वरूप हैं, उसी माधुर्यको वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं । आचार्यों का भी यही कार्य रहा । कोई लेखनी से, कोई वाणी लेखनी दोनोंसे उस रसस्वरूप परमात्मा के चरित्रका गान और अनुकरण किया है । कर्मवीर महामण्डलेश्वर स्वामी रामकुमारदासजी महाराजने भी आचार्योपसेवन पूर्वक भगवच्चरित्रका गान करके उन्हींके श्रीचरणोंमें पुष्पांजलिके रूपमें समर्पित कर दिया, यही अमिट इतिहास है । जो शहादत देता रहेगा । आपने पांच आश्रमोंका निर्माण करके उसे अपने शिष्य-प्रशिष्यों के हाथों में सौंप दिया जो अष्टदल कमलवत् प्रतीत हो रहे हैं । यथा–१-श्रीमं. स्वामी केशवदासजी २-श्रीमहान्त रामचन्द्रदासजी । ३- महान्त श्रीरामलक्ष्मणदासजी ४-महान्त श्रीगंगादासजी ५-रामायणी श्रीअखिलेश्वरदासजी ६-श्रीपवनकुमारदास शास्त्री ७-श्रीसुरेशदासजी ८-महान्त श्रीरघुनाथदासजी इन अष्टदल कमलमें जो सौरस्य, सौमनस्य, सौकुमार्य, माधुर्य, सौंदर्य और औदार्यरूप गुण हैं उसके उत्समें आपश्री सुशोभित हो रहे हैं, यह आपके जलकमलवत् जीवनका सहेतुक रूपक है । यही संत जीवनका तात्पर्य है ।

मैं अपने शास्त्री रामदेवदासजी की साहित्यिक सेवाकी सराहना करना अपनी ही प्रशंसा मानता हूँ । इनके कार्यों पर पूर्ण विश्वस्त और संतुष्ट हूँ । श्री अवधक्षेत्र में जन्मे और छात्रजीवनसे ही मेरे साथ रहकर इन्होंने जो श्रीअवध-भूमिका संस्कार सहज रूप से प्राप्त किया, वही उसका साकाररूप दृश्यमान है । श्रीसीतारामजी इन्हें यशस्वी और दीर्घायु बनावें यही मेरा आशीर्वाद है ।

इतिशम् ।
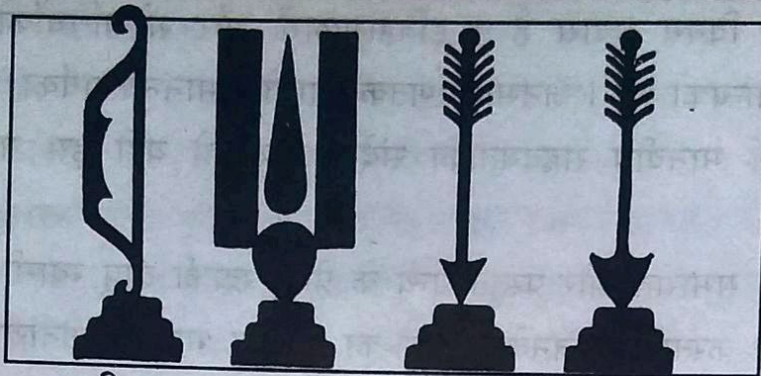
सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

श्रीरामीय सं० १, ८१, ९३, १०० । वि. सं० २०५६, श्रीरामानन्दाब्द ७००

मङ्गलाचरण

हे मैथिली हृदय पंङ्कज भृङ्गराज, हे स्वीयभक्तजनमानसराजहंस ।
हे सूर्यवंशविभुवैभव ! रामचन्द्र, त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥१॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयकमलके भ्रमर ! हे स्वभक्तजनोंके मनोकूपमानसरोवरके राजहंस ! और हे सूर्यवंशके सर्वस्व श्रीरामजी महाराज ! आपके चरणकमलका रज मेरी रक्षा करे ॥१॥

हे मैथिली हृदय पङ्कजकञ्जनाथ ! हे भक्तवत्सल ! कृपाकर ! राघवेन्द्र ।
हे दीन रक्षक ! शरण्य ! सुखस्वरुप ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥२॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्य ! हे भक्तवत्सल ! हे कृपासिन्धु ! दीनोंके रक्षक ! हे सबको शरण देने वाले ! और हे सुखस्वरुप भगवान् श्रीरामजी महाराज ! आपके चरणकमलका रज मेरी रक्षा करे ॥२॥

हे मैथिली हृदय भूषण ! कान्तकान्ते ! हे नीलपद्मरुचिराङ्घ्रियुग ! स्वयम्भो ।
हे विश्वनाथ ! रघुनाथ ! वरेण्य कीर्ते ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥३॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयालङ्कार ! हे सुन्दर कान्तिवाले ! हे नीलकमलके समान सुन्दर चरणवाले ! हे कारणरहित ! हे विश्वनाथ और हे प्रशस्तकीर्तियुक्त भगवान् श्रीरामजी महाराज ! आपके श्रीचरणोंका रज मेरी रक्षा करे ॥३॥

हे मैथिली हृदयमन्दिर शुभ्रमूर्त्ते ! हे वायुपुत्र परिषेवित पद्मपाद ।
हे आशुतोष ! जगदीश्वर ! भक्तिलभ्य ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥४॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयमन्दिरकी सुन्दर मूर्त्ति ! हे श्रीहनुमान्‌जीसे सेवित ! हे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, हे भक्तिमात्रसे प्राप्त करने योग्य ! हे जगदीश्वर श्रीरामजी महाराज ! आपके चरणोंकी रज मेरी रक्षा करे ॥४॥

हे मैथिलीहृदयराजमणे ! रमेश ! हे सर्वज्ञ ! प्रणतपालक ! दीनबन्धो ।
सृष्टि-स्थितिप्रलयलील ! महानुभाव ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥५॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयके चिन्तामणि ! हे सर्वव्यापक ! हे प्रणतपालक ! हे दीनबन्धो ! हे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरुप लीला करने वाले महातेजस्वी श्रीरामजी महाराज ! आपके चरण कमलों का रज मेरी रक्षा करे ॥५॥

हे मैथिली हृदयवल्लभ ! रूपराशे ! हे सर्वद ! श्रुतिवचस्स्तुत ! राघवेश !
हे पापपुञ्जदहनानल देवदेव ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥६॥

हे श्रीजानकीजीके परमप्रिय ! हे रूपनिधे ! हे सबकी मनः कामना को पूर्ण करने वाले, वेदवचनोंसे स्तुत ! हे सम्पूर्ण पापोंको भस्म करने वाले ! हे देवताओं के 'भी पूज्य श्रीरामजी महाराज ! आपके चरणों की धूलि मेरी रक्षा करे ॥६॥

हे मैथिलीहृदयहार ! मनोजमूर्ते ! हे शर्वरीशविमलानन ! सर्वशक्ते ।
हे भक्तवश्य ! करुणालय ! नित्यमूर्ते ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥७॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयके हार ! हे परमसुन्दरमूर्ति वाले ! हे चन्द्रसमान सुन्दर मुखवाले ! हे सर्वशक्तिसम्पन्न ! हे भक्तोंके वशमें रहने वाले ! हे परम कारुणिक ! नित्यविभूतियुक्त श्रीरामजी महाराज ! आपके चरणकमलोंकी धूलि मेरी रक्षा करे ॥७॥

हे मैथिली हृदयवास ! जगन्निवास ! हे भूमिभारहृदनीश ! जगच्छरण्य ।
हे राम ! हे रघुपते ! रघुवीर धीर ! त्वत्पादपङ्कजरजः शरणं ममास्तु ॥८॥

हे श्रीजानकीजीके हृदयमें निवास करने वाले ! हे सर्वजगत् के आश्रय ! हे पृथ्वीके भार को हरण करने वाले ! अनीश जिसका कोई ईश न हो अर्थात् स्वतन्त्र ! हे सबको शरण देने वाले ! हे रघुकुलमणि श्रीरामजी महाराज ! आपके श्रीचरणोंकी धूलि मेरी रक्षा करे ॥८॥

इति वेदोपनिषद् ब्रह्मसूत्रगीतादिभाष्यकार महाकवि पण्डितराज सारस्वत सार्वभौम
जगदगुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज
द्वारा विरचित भक्तसर्वस्वं स्तोत्रम्

श्रीयतिराजमङ्गलम्

पुण्यसद्मात्मजाय श्रीधन्यकन्याङ्कमूश्रिये ।
राघवानन्द पुण्यश्री भूषारत्नाय मङ्गलम् ॥१॥

श्रीपुण्यसदनके पुत्र, धन्यकन्या श्रीसुशीलाकी गोदीकी शोभा, और श्रीराघवानन्द स्वामीजीके पुण्यश्रीके आभूषणके रत्न, ऐसे श्रीरामानन्द स्वामीजी महाराजकेलिए मङ्गल हो ॥१॥

रामसीताञ्जनासूनुब्रह्मादिपरिरक्षिताम् ।
श्रीसम्प्रदायसम्भूतिवर्धयित्रेऽस्तु मङ्गलम् ॥२॥

श्रीराम, श्रीसीता, श्रीअञ्जनासूनु-श्रीहनुमान्, श्रीब्रह्माजी, श्रीवशिष्ठजी, श्रीपराशरजी और श्रीव्यासजी प्रभृति महान् आचार्योंसे सुरक्षित श्रीसम्प्रदायके ऐश्वर्यको बढ़ानेवाले श्रीरामानन्दस्वामीके लिए मङ्गल हो ॥२॥

राममन्त्रमहाराजराज्यजीवातुरक्षिणे ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय रामानन्दाय मङ्गलम् ॥३॥

श्रीराममन्त्रमहाराजके राज्यसे जीवनकी रक्षा करनेवाले, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वामी श्रीरामानन्दके लिए मंङ्गल हो ॥३॥

सर्ववेदार्थसत्तत्वसत्वसद्रत्नराशये ।
जगदानन्दनानन्द भाष्यकाराय मङ्गलम् ॥४॥

समस्त वेदोंके अर्थरुप जो सुन्दरतत्व, उनका जो सत्व-सार, वही हुये सुन्दररत्न, उनके परमनिधि तथा जगत्को आनन्दित करनेवाले ब्रह्मसूत्रपर आनन्दभाष्य बनानेवाले, श्रीरामानन्दस्वामीजीके लिए मङ्गल हो ॥४॥

त्रिलोकीनाथताद्योति स्वात्मज्योतिः प्रकाशकम् ।
त्रिदण्डं विभ्रते न्यासिसार्वभौमाय मङ्गलम् ॥५॥

त्रिलोकीकी स्वामिताकी प्रतीति करानेवाले तथा आत्मतेजका प्रकाश करनेवाले त्रिदण्डको धारण करते हुए यतिराज श्रीरामानन्दके लिए मङ्गल हो ॥५॥

कषायाभावसंसूचिकाषायाम्बरधारिणे ।
श्रीमते यतिराजाय रामानन्दाय मङ्गलम् ॥६॥

समस्त दोषों-विकारोंके अभावके सूचक काषायवस्त्रको धारण करनेवाले श्रीमान् यतिराज श्रीरामानन्दके लिए मड्गल हो ॥६॥

उपदेशसुधावर्षिवचनारचनाश्रिया ।
मड्गलं दिशते नित्यं जीवजाताय मड्गलम् ॥७॥

उपदेशामृतकी वर्षा करनेवाले वचनोंकी रचनाकी श्रीसे समस्त जीवोंको मड्गल देते हुये श्रीरामानन्दस्वामीजीके लिए मड्गल हो ॥७॥

जगत्संत्राससंत्रस्तजीवोद्धाराध्वकारिणे ।
दिव्यसम्पत्तिसंशोभिमानसायास्तु मड्गलम् ॥८॥

जगत्के त्राससे संत्रस्त जीवोंके उद्धारार्थ भक्तिमार्गका निर्माण करनेवाले कृपा, वात्सल्यादि दिव्यविभूतियोंसे शोभित मनवाले श्रीरामानन्दके लिए मड्गल हो ॥८॥

सर्वजीवमहामोहि मायाकायाभिभाविने ।
सर्वशक्तिप्रदाय श्रीरामानन्दाय मड्गलम् ॥९॥

सब जीवोंको महान् मोह प्राप्त करानेवाली मायाके शरीरका तिरस्कार करनेवाले अर्थात् मायासे परे रहनेवाले सर्वशक्तिप्रद श्रीरामानन्दके लिए मड्गल हो ॥९॥

विद्यामहीमहीपायाविद्यासन्तमसच्छिदे ।
धर्मरूपाय भूपाय धर्मभूमेश्च मड्गलम् ॥१०॥

ब्रह्मविद्यारूप भूमिके महाराज, अविद्यारूप अन्धकारको छिन्न करनेवाले, धर्मस्वरूप और धर्मभूमिके महाराज श्रीरामानन्दस्वामीके लिए मड्गल हो ॥१०॥

इति श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य सारस्वत सार्वभौम
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामि भगवदाचार्य
महाराजैः १९८८ तमे विक्रमसंवत्सरे
प्रणीतं श्रीयतिराजमड्गलम्
समाप्तम्

आचार्यपरम्परास्तवन

परात्परब्रह्म श्रीरामजी-१

यन्नामस्मरणं सदा सुखकरं त्रैविध्यदोषापहं,
ब्रह्माविष्णुशिवादिकारणपरं तापत्रयोन्मूलनम् ।
सीतायै प्रददौ स वेदविदितम् ॐकारबीजं शुभं,
वन्दे तं भवखेदनाशनपरं रामाङ्घ्रिमिष्टं मम ॥

जिनके (श्रीराम) नामका स्मरण सदा सुखकारक और तीनों (मनसा, वाचा, कर्मणा) दोषोंका अत्यन्त निवारक है । जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीका परम कारण है और जो तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंको समाप्त (उच्छिन्न) कर देने वाला है, उन श्रीरामजीने वेदविदित ॐकारके बीज मंगलमय तारकमन्त्रराजका उपदेश सर्वप्रथम (आदिशक्ति) श्रीसीताजीको प्रदान किया, उन श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणतल मेरे इष्ट हैं । अतः सांसारिक आवागमनसे मुक्ति दिलाने वाले उन (प्रभु) की मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

श्रीसीताजी-२

यस्यांशप्रभवादिकार्यजगतो वेदान्तविद्या च या,
यामाहुः श्रुतयो महामुनिजनाः मायेश्वरीसंज्ञिकाम् ।
मत्वा रामपरायणं पवनजं तस्मै ददौ तारकं,
तेनेदं कथितं षडक्षरयुतं तस्यै नमामो वयम् ॥२॥

जिनके अंशसे चराचर जगत्का उत्पत्ति आदि कार्य सम्पन्न होता है और जो वेदान्त-(अध्यात्म) विद्याके नामसे प्रसिद्ध हैं । श्रुतियाँ और महामुनिजन जिन्हें मायाधीश्वरीके नामसे पुकारते हैं । पवनपुत्र श्री हनुमान्जीको श्रीरामपरायण मानकर जिन्होंने उन्हें श्रीतारक मन्त्रको प्रदान किया, इसीलिये वह (तारक) षडक्षरयुक्त होकर लोक और वेदमें प्रसरित हुआ, अतः उन श्रीपदवाच्य सीताजीको हम प्रणाम करते हैं ॥२॥

श्रीहनुमान्जी-३

मायामोहभयादिबन्धनपरो दासत्वमेवावहन्,
रां रामाय नमश्च तारकजपे तस्यैव ध्याने रतः ।
एषो वै भवभीतिहारकविभुः कालेश्वरो मारुतिः,
कस्मै मन्त्रदभक्तरामरसिकस्तस्मै नमामो वयम् ॥३॥

द्वासत्वका आवहन करते हुये श्रीमारुतिजी महाराज अविद्यामाया-मोह और भय आदि बन्धनोंसे परे (निर्लप्त) हैं । **तज्जपस्तदर्थभावनम्** के अनुसार **रां रामाय नमः** इस तारक मन्त्रराज के जप और उसके अर्थानुसन्धान में रत (संलग्न) हैं । वही सर्वसमर्थ कालेश्वर, भवभयहारी श्रीब्रह्माजीको मन्त्रप्रदाता, रामभक्त और रामरसिक हैं, (अतः) हम उन्हें प्रणाम करते हैं ॥३॥

श्रीब्रह्माजी-४

यो लोकान्विदधाति वेदवदनो यो रामचन्द्रप्रियो,
रामाराधनतत्परो ह्यनुदिनं ज्ञानस्वरुपो ह्यसौ ।
रक्ताम्भोजवपुस्सदासुरगणैः संस्तूयमानश्च य
स्तम्वै लोकपितामहं सुरवरं वन्दे गुरुणां गुरुम् ॥४॥

जो लोकोंकी रचना करते हैं, जो श्रीरामचन्द्रजी के प्रिय हैं, जो निरन्तर श्रीरामजीकी समाराधनामें तत्पर हैं और जो चतुर्मुखी तथा ज्ञानस्वरुप ही हैं। सुरगणों द्वारा जो सदा संस्तूयमान हैं । रक्तकमलके समान जिनके शरीरकी मनोहरता है, उन सुरश्रेष्ठ, लोकपितामह और आचार्योंके आचार्यकी मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥

श्रीवशिष्ठजी-५

साकेताधिपरामचन्द्ररसिको ब्रह्मर्षिवर्यो गुरुः,
पौरोहित्यमभीप्सितं प्रमुदितो रामाङ्घ्रिसेवी सदा ।
योगीन्द्रः श्रुतिशास्त्रपालनपरः वेदान्तवादे रतः,
शिष्यश्चाथ सुतो विधेः शरणदं तं त्वां वसिष्ठं नुमः ॥५॥

नित्य साकेताधिपति श्रीरामचन्द्रके रसिक, सदा श्रीरामाङ्घ्रिसेवी, ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ, योगीन्द्र, श्रुतियों और शास्त्रोंके आज्ञापालनमें तत्पर, अध्यात्मवादमें संलग्न, गुरुपदसे प्रसिद्ध, विधाताके मानसपुत्र और शिष्य, सभीको समानरुपसे शरण प्रदान करनेवाले उपर्युक्त गुणोंसे युक्त हे श्रीवसिष्ठजी महाराज ! हम तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥५॥

श्रीपराशरजी-६

शक्तेरपत्यञ्च वसिष्ठपौत्रं शिष्यं तथा रामपदानुरक्तम् ।
आचार्यवर्यं मुनिराजराजं पराशरं तं सततं नमामि ॥६॥

शक्तिऋषिके पुत्र, श्रीवसिष्ठजीके पौत्र तथा शिष्य, श्रीरामजीके श्रीचरणोंके ध्यानमें संलग्न रहनेवाले आचार्यश्रेष्ठ मुनिराज, उन पराशर मुनिको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥६॥

श्रीव्यासजी-७

लोकस्य मित्रं परमं पवित्रं वेदावतारं कविकोविदम्वै ।
श्रीरामतत्वे निहितं सदा तं व्यासं नमामो मनसा गिरा त्वाम् ॥७॥

संसारके मित्र, परमपवित्र, वेदावतार, कवि और कोविद तथा श्रीरामतत्त्वमें निहित हे श्रीव्यासजी महाराज ! हम तुम्हें मन और वाणीसे प्रणाम करते हैं ॥७॥

श्रीशुकाचार्यजी-८

यो जन्मतो ज्ञानविरागयुक्तः, साक्षात् शिवो भागवतप्रधानः ।
व्यासाम्बुधेश्चन्द्र इवोदितोसौ, शुकार्य ! तं त्वां हृदि भावयामः ॥८॥

भागवतोंमें श्रेष्ठ, साक्षात् शिवके अवतार, जो जन्मसे ही ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हैं और जो भगवान् श्रीबादरायणरूपी सागरसे परम आह्लादकारी चन्द्रमाके समान हुये, इन लक्षणोंसे सम्पन्न हे शुकाचार्यजी महाराज ! हम तुम्हें हृदयमें धारण करते हैं ॥८॥

श्रीबोधायनाचार्यजी (पुरुषोत्तमाचार्य)-९

बोधायनं वेदविदां वरिष्ठं, स्वात्मानुरक्तञ्च शुकस्य शिष्यम् ।
श्रीमद्विशिष्टार्थकबोधयन्तं, तमद्वयं त्वां शिरसा नमामः ॥९॥

वेदविदोंमें वरिष्ठ, अध्यात्ममें अनुरक्त, श्रीशुकाचार्यके शिष्य, श्रीमद्विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तके प्रबोधक हे श्रीबोधायनाचार्यजी महाराज ! (पुरुषोत्तमाचार्य) हम तुम्हें सिर से प्रणाम करते हैं ॥९॥

जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्यजी-१०

गंङ्गाधराचार्यवरं दयालुं, रामस्यपादाम्बुजबद्धदृष्टिम् ।
बोधायनस्वामिवरस्य शिष्यं, नमामि तेहं भवमुक्तिकामः ॥१०॥

श्रीरामजीके श्रीचरणारविन्दोंके ध्यानमें जिनकी निश्चल दृष्टि है, ऐसे दयालु आचार्यश्रेष्ठ और स्वामी बोधायनाचार्यवर्य के शिष्य हे श्रीगङ्गाधराचार्यजी महाराज ! संसारसे मुक्तिकी कामना वाला मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी-११

सदानन्दमाचार्यमानन्दरूपं, जगज्जालमालाकुलानाञ्च वैद्यम् ।
रमानाथपादारविन्दानुरक्तं, भजेहं कृपालुं सदा तं गुणेशम् ॥११॥

स्वामी सदानन्दाचार्यजी महाराज आनन्दके रूप हैं । जगत्के अनेक जंजालोंसे व्याकुल लोगोंकेलिये (भवरोग निवारक) वैद्य हैं । रमानाथ श्रीरामके श्रीचरणारविन्दोंमें अनुरक्त, समस्त सद्गुणोंके स्वामी, उन कृपालु का मैं निरन्तर भजन कर रहा हूँ ॥११॥

जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी-१२

जगत्तारकं राममन्त्रं जपन्तं सदा दीनसेवारतं दीनबन्धुम् ।
दयाम्भोधिरूपं जगत्तारकं त्वां, भजेहं च रामेश्वरानन्दमार्यम् ॥१२॥

जगत् के तारक श्रीराममन्त्रराजका जप करते हुये जो सदा दीन-दुःखियों की सेवामें रत रहे हैं, ऐसे दीनबन्धु, दयाके सागररूप और जगत्के तारक श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराजको मैं भजता हूँ ॥१२॥

जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्यजी-१३

सदैकान्तिकं सच्चिदानन्दरूपं लसच्छ्रीतुलस्याश्च मालोर्ध्वपुण्ड्रम् ।
सदा द्वारमाचार्यपादारविन्दे, नतोहं च रामेश्वरानन्दशिष्यम् ॥१३॥

सच्चिदानन्दस्वरूप, सदा ऐकान्तिक भक्तिका सेवन करनेवाले, श्रीतुलसीकी माला और ऊर्ध्वपुण्ड्रसे विभूषित, स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य श्रीद्वारानन्दाचार्यजी के श्रीचरणारविन्दों में मैं सदा नतमस्तक हूँ ॥१३॥

जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी-१४

अविद्यादिदोषापहं देवकल्पं; च योगीशमाचार्यमानन्दनिष्ठम् ।
भजे भक्तिवैराग्यविद्याम्बुधिं तं, सदाहं महामन्त्रपूतङ्कवीन्द्रम् ॥१४॥

अविद्या आदि (क्लेशरुप दोषों) का अपहरण करने वाले, देवकल्प, (देवतुल्य), योगियोंके स्वामी, आनन्दनिष्ठ, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके सागर, कवीन्द्र, महामन्त्रके अनुष्ठानसे पूतान्तःकरण श्रीदेवानन्दाचार्यजी महाराजको मैं सदा भजता हूँ ॥१४॥

जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्यजी-१५

नतोहं च श्यामार्यमानन्दरूपं, रतिर्यस्य वेदान्ततत्वे सदैव ।
सदा जानकीनाथपादानुरक्तं, च योगीशमाचार्यगोष्ठ्यां वरिष्ठम् ॥१५॥

वेदान्ततत्त्वमें सदैव जिनकी रति है, ऐसे आनन्दरूप, सदा श्रीजानकीनाथजी के चरणारविन्दोंमें अनुरक्त, आचार्यों की गोष्ठी (सभा) में वरिष्ठ श्रीश्यामानन्दाचार्यजी महाराजके प्रति मैं नतमस्तक हूँ ॥१५॥

जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी-१६

श्रुतानन्दमाचार्यकल्पं सुवेषं, त्रिदण्डेन युक्तञ्च लोकस्य हृद्यम् ।
सदा जानकीनाथपादाब्जनिष्ठं, भजेहं सुकैवर्तकं यो भवाब्धेः ॥१६॥

लोकहृदयग्राही, काषायाम्बरधारी, त्रिदण्डसे युक्त, सदा श्रीजानकीनाथके पादारविन्दों में निष्ठ, संसाररूप सागरसे पार लगानेवाले जो आचार्यकल्प श्रीश्रुतानन्दाचार्य हैं, उन्हें मैं भजता हूँ ॥१६॥

जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यजी-१७

अचित् चिद्विशिष्टस्य रामस्य दासं, चिदानन्दमाचार्यपादं गुणाब्धिम् ।
त्रिकं बोधयन्तं जनानां समक्षं, भजेहं यतीन्द्रं श्रुतानन्दशिष्यम् ॥१७॥

चित् (आत्मा) अचित् (माया) से विशिष्ट (युक्त) श्रीरामचन्द्रके दास, भक्तोंके समक्ष तत्त्वत्रयका ज्ञान करानेवाले, सद्गुणोंके सागर, यतीन्द्र और श्रीस्वामी श्रुतानन्दाचार्यजीके शिष्य श्रीचिदानन्दाचार्यजी महाराजको मैं भजता हूँ ॥१७॥

जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी-१८

चिदानन्दसन्दोहसन्तापहारी, चिदानन्दसत्यस्थितो रामदेवे ।
सदा कीर्तयन् यो हरे राम राम, तदाचार्यपूर्णं नतोहं नतोहम् ॥१८॥

सभी सन्तापोंका हरण करने वाले जो चिदानन्दसन्दोहरूप हैं, हरे राम रामका कीर्तन करते हुये सच्चिदानन्दमय श्रीरामदेवमें जिनकी प्रज्ञा स्थित है, ऐसे स्वामी पूर्णाचार्यजी महाराजके प्रति मैं बारम्बार नतमस्तक हूँ ॥१८॥

जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी-१९

पुराणादिरामायणस्यापि वक्ता, श्रियानन्दयोगीशरामस्य दासः ।
महाचार्यपूर्णस्य पादानुगामी, सदां तं कृपालुं नतोहं नतोहम् ।।१९।।

वेद, पुराण, शास्त्र और श्रीरामायणके भी वक्ता, श्रीरामजीके दास, योगीश और महा-आचार्य पूर्णानन्द स्वामीके श्रीचरणचिह्नोंपर जो चलने वाले हैं, ऐसे उन श्रियानन्दाचार्यजी महाराजके प्रति मैं बारम्बार नतमस्तक हूँ ।।१९।।

जगद्गुरु श्रीहर्यानन्दाचार्यजी-२०

हरेरङ्घ्रिमूले स्थितं भृङ्गराजं, सदा वैष्णवैः सेवितं सद् विरक्तम् ।
तदाचार्यवर्यं हरिं पादयुग्मं, नतोहं नतोहं नतोहं नतोहम् ।।२०।।

श्रीहरिके श्रीचरणारविन्दोंमें मत्तमधुपराजके समान स्थित, सद्विरक्त और सदा श्रीवैष्णवोंद्वारा सेवित उन आचार्यश्रेष्ठ श्रीहर्यानन्दाचार्यजी महाराजके प्रति मैं बारम्बार नतमस्तक हूँ ।।२०।।

जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी-२१

ब्राह्मस्यकल्पं कृतरामभक्तिं, धर्मस्य हेतोः प्रगृहीतदेहम् ।
आचार्यकृत्यं प्रथितं नृलोके, तं राघवानन्दमहं नमामि ।।२१।।

जो श्रीब्रह्मर्षि वसिष्ठके अवतार हैं । जिन्होंने श्रीरामभक्तिको अपने जीवनमें धारण-पोषण और आचरित किया है । धर्मरक्षाके कारण जिन्होंने शरीरको स्वीकार किया है । मृत्युलोकमें जिन्होंने जगद्गुरु-आचार्य के कर्तव्य का प्रचार-प्रसार किया (और कराया) है, ऐसे श्रीस्वामी राघवानन्दाचार्यजी महाराज को मैं प्रणाम करता हूँ ।।२१।।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी-२२

यो रामभक्तिं जनयन्नृलोके, हिन्दुत्वरक्षां कृतवान् स्वभावात् ।
तं विश्वबन्धुं जगतां प्रकाशं, ह्यानन्ददं राममहं भजामि ।।२२।।

(विधर्मियों में भी) जिन्होंने श्रीरामभक्तिका संचार किया है । स्वाभाविक रूपसे जिन्होंने हिन्दुत्व (सनातन धर्म) की रक्षा की है । (रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले) इस प्रमाणके

अनुसार) जो जगत्के परमप्रकाश और आनन्दप्रदान करनेवाले हैं, उन विश्वबन्धुरूप श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजका मैं भजन करता हूँ ॥२२॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी-२३

श्रीजानकीनाथ पदाब्जभृङ्ग स्वातन्त्र्यनिष्ठं प्रतिवादिसिंहम् ।
व्यासापरं पण्डितराजराजं, स्वाचार्यवर्यं भगवन्नमामि ॥२३॥

जो श्रीजानकीजानि रघुनाथजीके श्रीचरणकमलोंके भृङ्ग (भ्रमर) हैं । जो स्वतन्त्रतामें निष्ठा रखते हैं तथा जो प्रतिवादियोंके समक्ष सिंहके समान हैं, उन अपर श्रीव्यासावतार पण्डितराजोंके राजा अपने आचार्यश्रेष्ठ श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराजको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी शिवरामाचार्यजी-२४

रामस्य तत्त्वं प्रथयन्नृलोके, रामः स्वयं यः शिवतामुपेतः ।
तं शान्तरूपं भगवत्प्रपन्नं, षड्दर्शनाचार्यमहं भजामि ॥२४॥

जगत् में श्री रामतत्त्वका प्रचार करते हुये स्वयं राम ही मानों श्री शिवरूप (शिवरामाचार्य) में अवतरित हुये हैं, ऐसे भगवत्प्रपन्न और शान्तरुप षड्दर्शनाचार्यजी महाराज को मैं भजता हूँ ॥२४॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्य्याचार्यजी-२५

शाण्डिल्यान्वयमण्डनं सुरगिरालङ्काररूपं बुधं,
श्रीमद्रामकथाप्रवाचनगुणं लौकेकवन्द्यं गुरुम् ।
रामानन्दजगद्गुरुं करुणया पूर्णं शरण्यं सदा,
हर्याचार्ययतीश्वरं श्रितहरिं वन्दे स्वधर्मप्रियम् ॥२५॥

जो श्रीशाण्डिल्यवंशको मण्डित करने वाले हैं और जो देववाणीके अलंकाररूप हैं, ज्ञानी हैं । श्रीमद्रामकथाके प्रवाचनमें जो सुकुशल हैं । अध्यापन, शिक्षा-दीक्षा जिनका कार्य है । लोकमें जो एकमात्र वन्दनीय हैं । जिनका हृदय करुणाभावसे परिपूरित है । जो सदा शरणप्रदाता हैं, जिन्होंने श्रीहरिका विधिवत् आराधन किया है, ऐसे यतीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराजका मैं वंदन करता हूँ ॥२५॥

॥ इति आचार्य रामदेवदासकृत श्रीसम्प्रदायाचार्यपरम्परास्तवन समाप्त ॥

परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी
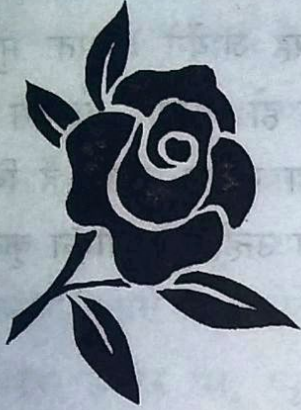
तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि इस जिज्ञासाके अनुसार भगवान् श्रीराम ही औपनिषद ब्रह्म हैं ।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इत्यादि तैत्तिरीय श्रुति तथा **जन्माद्यस्य यतः** इस ब्रह्मसूत्रके अनुसार ब्रह्मतत्त्वके रूपमें श्रीरामतत्त्व प्रतिपादित है । जिससे जड-चेतनात्मक प्राणियोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, वह ब्रह्म है ।

शक्तिशक्तिमतोरभेदः इस न्यायसे लीलारूपमें पति-पत्नी रूप हैं - **स एकाकी न रमते, द्वितीयमैच्छत्, तस्माच्च पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।**

गीतामें ब्रह्मकी उस संकल्प शक्तिको महान् (प्रधान) प्रकृति कहा गया है । उसीको कारण बनाकर भगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं । सभी प्राणियोंका अनादि और अव्यय बीज वही है ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ गीता-१४/३-४

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इन त्रिदेवों का जो कारण है, वह श्रीरामतत्त्व परब्रह्मका वाचक है-

यथा- ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या, यस्यांशा लोकसाधकाः ।
नमामि देवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ॥

श्रीनारद-सनत्कुमार सम्वादमें भगवान् श्रीव्यासजीने बहुत दूरदर्शिताके उपदेश घोर कलियुगी प्राणियोंको प्रदान करते हैं कि इस युगमें द्विजाति वेदपरायण नहीं रह जायेंगे । अतः मुक्तिका साधन गौण हो जायेगा । वर्णाश्रम धर्मकी भी सनातन मर्यादा नष्टप्राय हो जायेगी, तो उस समय कलिकालके करालभयसे मुक्ति कैसे होगी । अतएव सरलतम साधनका स्मरण कराते हैं कि जो श्रीरामनामपरायण पुरुष होंगे वही कलिकी बाधाओं से मुक्त रहेंगे, तथा उन्हीं का जीवन कृतकृत्य रहेगा । यथा-

रामनामपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विजाः ।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ॥ -स्कन्दपुराण उ० खण्ड

भगवान् श्रीमन्नारायण भी श्रीरामांश है-

नारायणोपि रामांशः शङ्ख शक्रगदाधरः —वाराह संहिता

श्रुति स्मृति पुराण और संहिता आदि ग्रन्थोंमें जहाँ कहीं पुरुष शब्द प्राप्त होता है उसका परम तात्पर्य पुरुषोत्तम श्रीराममें ही है । जैसे कि-

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ —काठक उ०१/३/१०-११

भौतिकवादियोंके मतको निरस्त करते हुये कहते हैं कि मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हैं । उपभोगके साधन विषय भी इन्द्रियों से परे है और उससे परे मन है । मन से परे बुद्धि और उससे भी परे महान् आत्मा है । उस महान् अव्यक्तसे भी परे परम अव्यक्त और उससे भी श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है । उस परमपुरुषसे श्रेष्ठ कोई नहीं है । वही परम सीमा है और वही सर्वोच्च स्थान है । भगवती श्रीगीताजीमें पूर्ण स्पष्ट हो जाता है । यथा—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

श्रीरामायण शिरोमणिकारने इस अन्यः पदका अर्थ श्रीराम किया है और उसी स्थलपर श्रीराम तथा कृष्णका एकत्व सिद्ध किया है। तात्पर्य यह है कि क्षर (प्रकृति-अविद्या) के वशवर्ती अक्षर (जीवात्मा) है किन्तु परमात्मा क्षर, अक्षर दोनोंसे विलक्षण है। वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ है अतः लोक और परलोकमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है।

इस प्रकार परात्पर परब्रह्म द्विमुख श्रीराम नित्य साकेतलोकमें श्रीसीताजीके साथ विराजमान हैं। वे सभी अवतारोंके अवतारी हैं। उनकी नखमणिचन्द्रिकासे परब्रह्मका भी प्राकट्य होता है। कभी वह एकपाद्‌विभूतिस्थ त्रिदेवोंके रूपमें, कभी व्यूहरूपमें, विभवरूपमें, अन्तर्यामीरूपमें तथा अर्चाविग्रहके रूपमें प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावताररूप श्रीवैष्णवाचार्योंने स्वीकार किया है। सभी अवताररूप विभूतियोंके कारणरूप श्रीसीतानाथ ही हैं। यथा-

सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः।
रामपादनखज्योत्स्ना परब्रह्मेति गीयते। -अगस्त्य संहिता

तस्मिन् साकेतलोके विधिहर हरिभिः सन्ततं सेव्यमाने,
नित्यं सिंहासने स्वे जनकतनयया राघवः शोभमानः।
युक्तो मत्स्यैरनेकैः कविभिरपि तथा नारसिंहैरनन्तैः,
कूर्मैः श्रीनन्दनन्दैर्हयगल हरिभिर्नित्यमाज्ञोन्मुखैश्च॥
यज्ञः केशववामनौ नरवरो नारायणो धर्मजः
श्रीकृष्णो हलधृक् तथा मधुरिपुः श्रीवासुदेवोऽपरः।
ऐते नैकविधा महेन्द्रविधयो दुर्गादयः कोटिशः,
श्रीरामस्य पुरो निदेशसुमुखा नित्यास्तदीये पदे॥ –बृहद् ब्रह्म संहिता

इस प्रकार सभीके नियामक श्रीराम ही हैं।

इसलिए निखिल ब्रह्माण्डोंके उत्पादक, परिपालक, नियामक और तारक श्रीमद्विशिष्टाद्वैतरूप श्रीरामसे अन्यत्र कुछ भी नहीं है। यथा-

सर्वशक्तिकलानाथं द्विभुजं रघुनन्दनम्।
द्विभुजाद्राघवान्नित्यं सर्वमेतत् प्रवर्तते॥ –सुन्दरी तन्त्र
स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।

परं तु द्विभुजं रूपं तस्मादेतत् त्रयं यजेत् ॥

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।

राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥ –हनुमदुपनिषद्

श्रीरामके परात्परत्वप्रतिपादनमें पुरुषसूक्तका वचन है-

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ।

अर्थात् एकपाद् विभूतिमें अनन्तब्रह्माण्डोंका विस्तार तथा त्रिपाद्विभूतिका पर्याय साकेतलोक है।

एकपाद् विभूतिमें ही रमावैकुण्ठ और ब्रह्मलोक आदि की स्थिति है किन्तु वे पुनरावर्ती हैं। जय-विजयका पतन, देवों और ऋषियोंके मध्य शापाशापी आदि प्रपंच इन लोकोंमें होते रहते हैं किन्तु साकेतलोक अप्राकृत है ।

यह ज्ञान साधनसाध्य नहीं, अपितु भगवत्कृपासाध्य है । शिरोमणिटीकाकारने इसी अर्थ में एक मन्त्र का उदाहरण दिया है । यथा-

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः ॥
यो वैतां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः
कीर्तिं प्रजां ददुः । -तैत्तिरीयशाखान्तर्गतारण्यमध्ये

यहाँ नित्यसाकेतविहारी-अयोध्यानाथ द्विभुज श्रीरामजी प्राकृत नाम, रूप और लीलासे रहित, सच्चिदानन्दमय, अप्राकृत श्रीविग्रहवान् होते हुये भी अपने स्मयमान मुखाम्बुजसे भक्तोंके हृदय का हरण कर रहे हैं । पूज्यपाद श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने–

वन्देहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् तथा
जो आनन्द सिंधु सुखरासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक विश्रामा ॥

इत्यादि प्रसंगोके माध्यमसे इसी तत्त्वकी पुष्टि की है ।

भगवान् श्रीकृष्णने जो कहा है-

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

यह इसीका संकेत है ।

श्रीमदाद्यशंकराचार्यजीने श्रीविष्णुसहस्रनाम भाष्यमें श्रीअगस्त्यसंहिताके प्रमाणसे राम शब्द को सिद्ध किया है । यथा-

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
तेन राम पदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥

श्रीरामजी सूर्यके भी कारण हैं - **सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः** आदि श्लोकोंमें महर्षि वाल्मीकिजीने श्रीरामके परात्परत्वका वर्णन किया है ।[१] सुधीजनोंके अनुरञ्जनार्थ कुछ श्रीमद्वाल्मीकिरामायण शिरोमणिटीकाके अनुसार प्रमाण दिये जा रहे हैं–

विष्णुना सदृशो वीर्ये (मूलरामायण) इत्यस्य विष्णुर्न आ समन्ताद् भावेन सदृशो यस्येत्यादित्यर्थः ।

अर्थात् पूर्ण रूपसे श्री विष्णु जिनके सदृश पराक्रमवान् नहीं हैं ।

विष्णोरर्धं महाभागम् (वा. रा. १/१८/११) इत्यस्य विष्णो अर्धं वर्धकम् । अर्थात् विष्णुके वर्धक श्रीराम हैं ।

जज्ञे विष्णुः सनातनः (वा. रा. २/१/७) सनति सर्वं रचयति इति सनातनः । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इत्यादि प्रतिपादित प्रकाशब्रह्म तदुपलक्षित ब्रह्मादीन् आतनोति तत्कार्यं नियामकत्वेन विस्तारयति । किञ्च सनं तदेव अः विष्णुश्च, आः ब्रह्मा च, आः शिवश्च ते सनाः तान् तनोति सः ।

अकारो वासुदेवः स्यादाकारस्तु पितामहः (एकाक्षरी कोष) आः स्वयम्भूरिभो वाजी खेदः शंकरवासवौ (मात्रिका कोश)

अर्थात् जो सबका रचयिता है, वह सनातन है । पूर्वोक्त **यतो वा इमानि** इत्यादि उपनिषत्श्रुतियोंमें प्रतिपादित जो प्रकाशरूप ब्रह्म है, उससे उपलक्षित जो ब्रह्मा आदिकोंके कार्योंका विस्तारक और नियामक (अनुशासक) है, वह श्रीरामतत्त्व है । अथवा अ = विष्णु, आः = ब्रह्मा आः = शिवतत्त्व सनाः शब्द से सिद्ध हुये, उनका जो विस्तारक है, वह श्रीरामतत्त्व है । सनाः पदके नाः में ३ अकार श्लिष्ट हैं । यथा - सन् + अ + आ + आ = सनाः ।

अश्च आश्च आश्च = आः ।

टिप्पणी-१ : विशेष ज्ञानहेतु 'श्रीराम स्तवराज' भक्ति भूषण भाष्य (हिन्दी) का अध्ययन करें ।

जो सबको रचता है वह सन् । तान् सनोति अर्थात् उपर्युक्त देवोंका जो नियामकत्वेन विस्तारक है, अतः वह सनातन है ।

इमं मूहूर्तं दुर्घर्ष स्मर त्वं जन्म वैष्णवम् । वा. रा. ६/९८/१३

वैष्णवम् - विष्णुप्रार्थनया प्रादुर्भूतं स्वकीयं जन्म इति विष्णूनां वैकुण्ठेश क्षीराब्धीशादि-भरतादिरूपेण प्राकट्यं स्मर ।

अर्थात् श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मनुशतरूपाकल्पमें जिस परात्परतत्वका श्रीरामरूपमें अवतार हुआ है उसीका कथन यहाँ है । यहाँ त्रिदेवोंकी चर्चा नहीं है । अतः इसका अर्थ यह हुआ कि श्रीविष्णुकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत आप अपने जन्म का स्मरण करें, यह ब्रह्मवाक्य है ।

वैकुण्ठाधीशस्तु भरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः ।
शत्रुघ्नस्तु स्वयंभूमा रामसेवार्थमागताः ॥

इस श्रुतिप्रमाणसे श्रीवैकुण्ठाधीश, श्रीक्षीराब्धीश और अष्टभुजी श्रीभूमाविष्णु क्रमशः श्रीभरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके रूपमें अवतरित हैं ।

श्रीब्रह्माजीने यहाँ मायामनुष्यरुप श्रीरामको उन्हें उस परात्परत्वका स्मरण कराया है ।

इस प्रकार श्रीरामानन्दसम्प्रदायके सन्तोंको, रामायणी महानुभावोंको इस रहस्यका अध्ययन अवश्य करना चाहिए तभी अनन्यनिष्ठासे श्रीरामपरिचर्यामें हम समष्टिका दर्शन कर सकते हैं । दाक्षिणात्य आचार्योंने इस आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकि रामायणका अधिकाधिक चिन्तन किया है । ऐसी जनश्रुति है कि शेषावतार जगद्गुरु श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजी महाराजने इस काव्यका १८ बार श्रीगुरुमुखसे श्रवण किया था । वेदान्त और श्रीमद्वाल्मीकीयके रहस्यज्ञ श्रीस्वामी सीतारामशरणजी (लक्ष्मण किलाधीश) का यह वाक्य है जो वे प्रायः कहा करते थे-

"वैष्णवके समस्त मान्याचार्योंने यह स्वीकार किया है- भगवानके समस्त अवतार नित्य एवम् पूर्ण हैं । किसी भी भगवद्विग्रहमें द्वेषगन्ध लेशमात्र भी नहीं है । अंश-कलादिके व्यवहारका तात्पर्य यह है कि जहाँ जितने सामर्थ्यकी आवश्यकता होती है, वहाँ उतने ही सामर्थ्य प्रकट करते हैं । इसलिए अंश, कला आदिके व्यवहार होते हैं । वास्तवमें सभी पूर्ण हैं ।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः ।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ॥
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ।

जिस प्रकार वैदूर्यमणि अनेक रंगोंके वस्त्रोंके संयोगसे अनेक रंगके देखे जाते हैं, उसी प्रकार भगवानके श्रीविग्रह भक्तोंके ध्यानके अनुसार अनेक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं ।

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः ।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः ॥" -श्री हरिदास भाष्य

-ः अवतार चरित्र ः-

सूर्यवंशमें अवतार । वेद पुराण और रामायण आदिमें प्रसिद्ध, विश्वकी प्रथम राजधानी व सप्तपुरियोंमें शिरोभूता श्रीअयोध्यानगरीमें जन्मभूमि । माता श्रीकौशल्यादेवी, पिता श्रीचक्रवर्तीनरेश दशरथजी । बाल्यकालमें परस्पर भ्रातृप्रेम । कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीके गुरुकुलमें समस्त शस्त्रास्त्रोंका अध्ययन-ऋषिपत्नी अहिल्योद्धार । विश्वामित्रकी यज्ञरक्षा । ताडका सुबाहुका वध । शिवपिनाक-भंजन । श्रीपरशुरामजीको स्वरूपज्ञान प्रदान । आदिशक्ति सीताजीसे ब्राह्मविवाह । पितृभक्तिकी पराकाष्ठा । १४ वर्षके वनवासकालमें गीधराज जटायुको मुक्ति, श्रीसुग्रीव और श्रीविभीषणजीको राज्यप्रदान रुप ये ३ महादान । आदिवासी कोल-भील और वानर-भालु आदिके साथ मानवीय आचरण और मैत्रीपूर्ण व्यवहार । आश्रमवासी ऋषि मनीषियों को समादर । समस्त पृथिवीको आसुरीवृत्ति से रहित करना तथा दैवीसम्पत्तिरुप रामराज्यकी स्थापना । लोकतन्त्रका अभूतपूर्व पालन । मर्यादा पुरुषोत्तमत्वकी अनुपम देन । समस्त उत्तर कोसलवासियों कीट-भृंग तकको भी अपने साथ लेकर नित्य लीलाभूमि त्रिपाद्विभूति - साकेतधाममें पधारना आदि श्रीरामचरित्रकी विशेषता है ।

श्रीपदवाच्या - सीताजी-२

षडक्षर श्रीराममन्त्रराजकी प्रवर्तिका (आद्याचार्या) श्रीसीताजी हैं । यह अनादि वैदिक परम्परा है । इसके परमोद्धारक कलियुगमें यतिराज जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज हैं ।

प्रायः सभी सम्प्रदायोंके आचार्य स्व-२ सिद्धान्त और परम्पराको अनादि कहकर वेदोंसे जोड़ते हैं, जैसे कि ज. गु. शंकराचार्य, मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी और स्वामी रामानन्दाचार्य आदि । इसके अनादित्व और वैदिकत्वकी सिद्धिमें सभी लोग अपनी-अपनी एक लम्बी आचार्य-परम्पराको भी प्रस्तुत करते हैं । कल्पवृक्षस्वरूप वेदभगवान सभीके मनोरथोंकी पूर्ति भी करते रहे हैं । लोकमान्यता भी इनपर अपना मुहर लगा ही देती है ।

कोई भी सिद्धान्त व परम्परा तभी स्थायी होती है कि जब उसे लोकमान्यता की प्राप्ति हो जाये । आचार्योंने कहा भी है - **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं न करणीयं नाचरणीयम्** । अतः किसी भी सिद्धान्तकी स्थापनाकेलिए यह अनिवार्य है कि वैदिकमान्यताके अतिरिक्त उसकी लोकमान्यता भी होनी चाहिए, यही भारतकी मानसिकता है ।

कुछ इससे तिरश्चीन भी दिखाई देते हैं किन्तु भारतवर्ष इतना उदार है कि भोगवादीको भी इसने सर्वथा तिरस्कृत नहीं किया है ।

उनमें भी देखो, जैन और बौद्धमत तो वेदसमादृत नहीं हैं । आर्यसमाजी भी आंशिक मूर्तिपूजक हैं ।

रजनीश और ब्रह्माकुमारी आदिके कल्पित सिद्धान्तोंसे बहुतसे लोग प्रभावित हैं । यह तो ऐसा हुआ जैसे आजके नेताओं की रैलियां ।

आज जिनका प्रचार-प्रसार बहुत जोर-शोर से हो रहा है, यह आधुनिक शिक्षा का प्रभाव है । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने तो यह भविष्यवाणी आजके ६०० वर्ष पहले ही कर दी है । यथा-

हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परइ नहिं पन्थ ।
जिमि पाखण्डवाद ते गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन्ह निज मत कल्पि करि प्रगट किये बहुपन्थ ॥

और भी

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि-नर करहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बश, करहिं विप्र गुरु घात ॥

आज देखिये ! भौतिकता से सम्पन्न मठ-मन्दिरों में भी क्या-क्या हो रहा है ?

उत्तर- प्रायः मुकदमें, हिंसा और दलगत राजनीति तथा विलासिता । आजके धर्माचार्यों और राजनेताओंमें आन्तर्य ही समाप्त होता जा रहा है । श्रीरामकी नगरी अयोध्यामें कितने मन्दिरस्थ ठाकुरजी ऐसे हैं कि जो अपलक नेत्रों से किसी भक्त की वाट जोहते हैं किन्तु साधारण भोग-राग-उपचार भी उन्हें समय से उपलब्ध नहीं हो पाता है !

क्या यही धर्म है ? क्या यही साम्प्रदायिकता है ? कतिपय उपदेशक आज अपने स्वरुपानुसन्धान किये बिना धर्मप्रचारका लेबल लगाकर भावुक जनता को उनकी जीवनपद्धतिसे विलग कर रहे हैं । यही कारण है कि हम जहाँ खड़े हैं वहीं संशयग्रस्त हैं । कहना न होगा कि यह सब कृत्रिमताका प्रभाव है ।

इसका कारण यह है - ईश्वर और धर्ममें अविश्वास, ब्रह्मचर्य और संयमका अभाव, माता, पिता और गुरुजनोंमें अश्रद्धा, प्राचीनताके प्रति विद्धेष तथा विलासिताकेलिए फिजूलखर्ची ।

हे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ! हे लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ! इन्हें सद्बुद्धि प्रदानकर अपनी लाज बचाइये ! अपनी गीता और रामायणकी लाज बचा लीजिये ! !

-: आधुनिक शिक्षा :-

आधुनिकशिक्षा प्राचीनशिक्षापद्धतिके प्रति विद्वेष रखती है जबकि प्राचीनशिक्षा सनातन धर्मकी अनुसारिणी है ।

भारतीय सभ्यताके अनुसार शिक्षाका उद्देश्य यह है कि लौकिक सर्वांगीण (शारीरिक, मानसिक, साम्पत्तिक और नैतिक) अभ्युदय और परलोकमें परमनिःश्रेयस् मोक्षकी प्राप्ति ।

हमारे ऋषियोंकी दृष्टिमें यही विद्या रही है - **सा विद्या या विमुक्तये** । विद्या वही है जो हमें अज्ञानके बन्धनसे मुक्त करे। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने **अध्यात्मविद्या विद्यानाम्** कहकर इसी सिद्धान्तका समर्थन किया है । आज हम इस शिक्षाके विपरीत हैं । समदर्शी और त्रिकालज्ञ ऋषियों ने ४ आश्रमोंकी प्रतिष्ठा-स्थापना की थी - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ।

इन्हींके परिचायक और उद्बोधक हैं - भारतीय सम्प्रदाय ।

सम्प्रदाय क्या है ?

सम् और प्र उपसर्ग पूर्वक डुदाञ् दाने धातुसे कर्मवाच्यमें **दीयते** पदकी सिद्धि होती है । **सम्यक् प्रदीयते अनेनेति सम्प्रदायः । सम्प्रदायो हि वेदः** । सम्प्रदायका अर्थ वेद होता है ।

यहाँ सम्प्रदायका अर्थ है गुरु परम्परासे प्राप्त ।

गुरु परम्परागतः सदुपदेशः ।

इस प्रकार इस श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय)का वेदवत् अगस्त्य और वाल्मीकिसंहिताके प्रमाण–

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः ।
वसिष्ठोपि स्वपौत्राय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम् ॥
पराशराय रामस्य मन्त्रं मुक्तिदायकम् ।
स वेदव्यासमुनये ददावित्थं गुरुक्रमः ॥
वेदव्यास मुखेनात्र मन्त्रो भूमौ प्रकाशितः ।
वेदव्यासो महातेजाः शिष्येभ्यः समुपादिशत् ॥ -अगस्त्य संहिता

भगवान् रामचन्द्रो वै परब्रह्म श्रुतिश्रुतः ।
दयालुः शरणं नित्यं दासानां दीनचेतसाम् ॥

इमां सृष्टिं समुत्पाद्य जीवानां हितकाम्यया ।
आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम् ॥
तारकं मन्त्रराजं तं श्रावयामास ईश्वरः ।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नूनं सा ब्रह्माणं सुधियाम्बरम् ।
तस्माँल्लेभे वसिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत् ॥
भूमौ हि राम मन्त्रोयं योगिनां सुखदः शिवः । –वाल्मीकि संहिता

मैथिली उपनिषद्में इस रहस्यका विशद विवेचन है ।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्यकृत सिद्धान्तपटलका प्रमाण-

जनकजां रामं सदा संश्रये इत्यादिके कथनसे श्रीसीताप्रवर्तित सम्प्रदायकी पुष्टि होती है ।

सदाशिव संहिताका प्रमाण–

राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम् ।
योयं महाविभूतिस्थो हनुमान् रामतत्परः ।
स प्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥

- हारीत स्मृतिका प्रमाण -

- अस्य श्री रामषडक्षरमन्त्रराजस्य श्रीजानकी ऋषिः आदि ।

वेदोपनिषद्गीताब्रह्मसूत्रभाष्यकार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज लिखते हैं **श्री सम्प्रदाय वही है** जिसका स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजने उद्धार किया था । उसकी मूल प्रवर्तिका भगवती सीता हैं । यथा-

परधाम्नि स्थितो रामः पुण्डरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥
श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरणहेतवे ।
हनुमते ददौ मन्त्रं सदा रामाङ्घ्रि सेविने ॥

-श्रीपरम्परायाम्

तथा च सदाशिव संहितायाम्-

राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम् ।

श्रीरामजी द्वारा कथित इस राममंत्रको श्री जानकीजीने प्रख्यात किया इसको तुम राजमार्ग जानो ।

श्रीरामानन्द स्वामीजीके पश्चात् तीसरी पीढ़ीमें श्रीअग्रदासजी महाराजकी लिखी हुई गुरुपरम्परा और श्लोकोंकी मान्यताके अनुसार श्रीरामजीसे इसका आरम्भ होता है । जैसे कि-

(१) सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज
(२) श्री जानकीजी
(३) श्री हनुमानजी
(४) श्री ब्रह्माजी
(५) श्री वसिष्ठजी
(६) श्री पराशरजी
(७) श्री व्यासजी
(८) श्री शुकदेवजी
(९) श्री पुरुषोत्तमाचार्यजी
(१०) श्री गंगाधराचार्यजी
(११) श्री सदाचार्यजी
(१२) श्री रामेश्वराचार्यजी
(१३) श्री द्वारानन्दाचार्यजी
(१४) श्री देवानन्दाचार्यजी
(१५) श्री श्यामानन्दाचार्यजी
(१६) श्री श्रुतानन्दाचार्यजी
(१७) श्री चिदानन्दाचार्यजी
(१८) श्री पूर्णानन्दाचार्यजी
(१९) श्री श्रियानन्दाचार्यजी
(२०) श्री हर्यानन्दाचार्यजी
(२१) श्री राघवानन्दाचार्यजी
(२२) श्री स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराज

आगे श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज कहते हैं - **ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः** इस निरुक्तवचनके अनुसार ऋषि वह होता है जो मन्त्रके अर्थपर विचार और उसका प्रचार करता है । हारीत-स्मृतिके अनुसार राममन्त्रकी ऋषि जानकीजी हैं -

ॐ अस्य श्रीरामषडक्षरमन्त्रराजस्य श्रीजानकी ऋषिः ।

इससे विदित होता है कि परात्पराशक्ति श्रीकी भी श्री जानकीजीको श्रीरामजीसे इस मन्त्रराजका उपदेश प्राप्त हुआ है ।

पूर्वाचार्य श्रीमधुराचार्यजीने श्री हनुमानजीको **सीताशिष्यं गुरोर्गुरुम्** कहा है ।

श्रीसम्प्रदायकी दो शाखायें हैं । एक श्रीशब्दवाच्याश्रीजानकीजीके द्वारा श्रीराममन्त्रराजकी

परम्परावली प्रकट हुई और दूसरी (श्रीशब्दवाच्या) श्रीलक्ष्मीजी द्वारा प्रकट हुई। यदि कहो कि जानकीजी श्रीशब्द वाच्या हैं, यह कहाँ लिखा है तो समाधान यह है कि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड सर्ग ११३ श्लोक २२में लिखा है–

वसुधाया हि वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम्।

अर्थात् श्रीजानकीजी श्रियोंकी भी श्री आद्याशक्ति सर्वेश्वरी हैं। पुनः श्रीअग्रस्वामीजीने लिखा है कि-

श्रीशब्देन भगवती सीतोच्यते।

अस्तु, उपर्युक्त दोनों शाखाओं का नाम श्रीसम्प्रदाय ही है क्योंकि दोनोंकी प्रवर्तिका श्रीजी ही हैं और दोनोंका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत एक ही है। अब यहाँपर यह विचार करना है कि उपर्युक्त दोनों शाखाओं में से मुख्यतः कौन सी शाखा चार सम्प्रदायों की गणना में है। इस पर प्रथमतः पूर्वाचार्यों के आविर्भाव पर विचार करने से यह सिद्ध है। सर्वश्रेष्ठ श्रीसम्प्रदायके मुख्य आचार्य प्रधानरूपसे श्रीरामानन्द स्वामी ही हैं क्योंकि उक्त स्वामीजी साक्षात् श्रीरामजी के अवतार हैं और श्रीरामानुज स्वामी श्रीशेषांश हैं। श्रीस्वामी रामानन्दजीकी प्रधानताके विषयमें कुछ शास्त्रीय प्रमाण भी सुन लीजिए।

वैश्वानर संहिता :- **रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले**

पुनः अगस्त्य संहिता–

तेऽथाप्यवतरिष्यन्ति भगवन्मतकोविदाः।
स्वयम्भू प्रमुखाः सर्वे महान्तो नित्यसूरयः॥

अर्थात् भगवान् रामानन्द स्वामीजी के साथ वैष्णवमतके परम विद्वान नित्यसूरि स्वयम्भू प्रभृति भी उत्पन्न होंगे। भागवत के छठे स्कन्ध में लिखा है-

स्वयभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो वलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्म्मं भागवतं भटाः॥

यमराज अपने दूतों से कहते हैं कि स्वयंभू, नारद, शंभु, प्रभृति और हम ये १२ ही भागवतधर्मके जानने वाले हैं। यहाँ १२ श्रीअनंतानन्द, सुरसुरानन्द आदि नामों से प्रसिद्ध होकर श्रीस्वामी रामानन्दजीके अनुयायी हुये हैं।

भविष्यपुराण तृतीय प्रतिसर्ग खण्ड दो अध्याय ३२ में लिखा है कि चारों सम्प्रदायों के आचार्य सूर्य विम्ब से प्रगट हुये । यथा-

इत्युक्त्वा स्वस्य विम्बस्य तेजोराशिं समं ततः ।
समुत्पाद्य कृतं काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत् ॥

निम्बादित्य (तत्रैव)

कलौ भयानके देवा मदंशो हि जनिष्यति ।
निम्बादित्य इति ख्यातो देवकार्यं करिष्यति ॥

मध्वाचार्य (तत्रैव)

इत्युक्त्वा भगवान् सूर्यो देवकार्यार्थमुद्यतः ।
स्वाङ्गात् तु तेज उत्पाद्य वृन्दावनमपेषयत् ॥
तेभ्यश्च वैष्णवीं शक्तिं प्रददौ भुक्ति मुक्तिदाम् ।
मध्वाचार्य इति ख्यातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले ॥

विष्णु स्वामी (तत्रैव)

अष्टविंशे कलौ प्राप्ते स्वयं जाता कलिञ्जरे ।
शिवदत्तस्य तनयो विष्णुशर्मेति विश्रुतः ॥
इत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रशस्य बहुधा हि तम् ।
विष्णुस्वामीति तं नाम्ना कथाश्चक्रुश्च हर्षिताः ॥

उपर्युक्त भविष्य वाक्योंसे निश्चय होता है कि श्रीसम्प्रदायके मुख्य आचार्य श्रीरामानन्द स्वामी ही हैं और शब्दकल्पद्रुम तथा वाचस्पत्यभिधान नामक कोष ग्रंथोमें सम्प्रदाय शब्द के अर्थ के अन्तर्गत लिखा है ।

पद्म पुराणे -

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।
श्रीमाध्विरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः ॥
रामानन्दो हविष्याशी निम्बार्कश्च महेश्वरि ॥

कुंभो एवं चढ़ावों पर भी चतुःसम्प्रदायकी गिनतीमें प्रथम श्रेणीमें हम लोग ही हैं । और देखिए, हम चतुः सम्प्रदायी विरक्त हैं । चारों सम्प्रदायके साथ एक पंक्ति में बैठकर भगवत् प्रसाद पाते हैं, चारों सम्प्रदायों की जय बोलाने की भी रीति प्रचलित है, चारों सम्प्रदाय वाले सदा कंठी धारण करते हैं । चतुःसम्प्रदायी श्रीरामकृष्णलीलाको नित्य मानते हैं । आराधना परात्पर रूप से करते हैं एवम् चतुःसम्प्रदायी श्रीभागवत धर्मको ही मुख्य मानते हैं । अतएव यह बात हर तरह से सिद्ध हो गयी कि मुख्यतः श्रीसम्प्रदायी रामानन्दीय श्रीवैष्णव ही हैं ।

इस सम्प्रदायपरम्पराका स्पष्ट वर्णन 'वाल्मीकि संहिता' के तृतीय अध्यायमें लिखा हुआ है ।

यथा– श्री सीता रामतः प्राप सा ददौ वायुसूनवे ।
ब्रह्मणे स ददावित्थं मन्त्रराजपरम्परा ॥

इन सब प्रमाणोंसे प्रत्यक्ष हो गया कि श्रीराममंत्रराजकी परम्परा सृष्टिके आदिमें भगवान्, श्रीसीताजी, श्रीहनुमान्जीके द्वारा ब्रह्मादि ऋषियोंमें सत्ययुगमें प्रचरित होकर वसिष्ठ आदि ऋषियोंमें त्रेतामें प्रचरित होकर, श्रीव्यास आदि ऋषियोंमें द्वापरमें प्रचरित होकर अविच्छिन्न रूपसे आजतक इस भूमण्डलमें प्रचरित है ।

यदि कोई यह पूछे कि सर्वप्रथम श्रीराममन्त्र श्रीजानकीजीको मिलनेके कारण श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवोंका श्रीसम्प्रदाय कैसे ?

तो इसका एक सर्वश्रेष्ठ अन्तिम उत्तर यह है कि जानकी अर्थात् जनक की कन्या, यह अर्थ यहाँ अभिप्रेत ही नहीं है । जनक का अर्थ है सृष्टि उत्पादक परमात्मा राम । उनकी अर्थात् जनक (राम) की अनादिशक्ति ही जानकी शब्दसे कही गयी है । वही शक्ति सीतापदवाच्य भी है– सीता या जानकी परब्रह्म की विवाहिता पत्नी है यह मानना भारी भ्रम है । उपासक अपने देव की प्रत्येक वस्तुका स्वेच्छासे नाम और रूपकी कल्पना कर सकता है और कर लेता है ।

* अवतार चरित्र *

यज्ञभूमिसे प्राकट्य । जीवोंके उद्धार हेतु अवतार । पालक माता-पिता महारानी सुनयना और निमिकुलराज श्रीजनकजी । अयोनिजा और लोकाभिराम श्रीरामकी नित्यसहचरी तथा आह्लादिनी शक्ति । **स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये** इस श्रीमद्वाल्मीकि रामायणवचनके अनुसार प्रभु श्रीरामजीको दण्डकारण्यमें कान्तासम्मिततयोपदेश । श्रीरामसे प्रार्थनाकर अपने ही अपकारी काकासुर (जयन्त) को जीवनदान दिलाना । वैरके बिना राक्षसवधकी श्रीरामप्रतिज्ञाको ध्यानमें रखकर और उन्हें उस राक्षसवधरूपदोषसे श्रीरामको मुक्त रखने हेतु लंकेश रावण के कारागारको स्वीकार करना । यह श्रीसीताजीके अनन्यशेषत्वका प्रमाण है । अग्निपरीक्षा में सतीत्वपरीक्षा यह अनन्य भोग्यत्वका प्रमाण है । सीतानिर्वासन और पातालप्रवेश यह अनन्यार्हत्व का प्रमाण है । श्री हनुमान्जीको उत्तम चरित्रकी शिक्षा देना । **रामायणं कृत्स्नं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्** इस श्रीरामायणोक्त प्रमाणके अनुसार समस्त श्रीरामायण सीता चरित्र ही है । अतः अवतार चरित्रमें वे नारीजगत्की मेखला कही गयी हैं —**नारीणामुत्तमा वधूः ।**

इस सम्प्रदायपरम्पराका स्पष्ट वर्णन 'वाल्मीकि संहिता'के तृतीय अध्यायमें लिखा हुआ है।

यथा– श्री सीता रामतः प्राप सा ददौ वायुसूनवे।
ब्रह्मणे स ददावित्थं मन्त्रराजपरम्परा॥

इन सब प्रमाणोंसे प्रत्यक्ष हो गया कि श्रीराममंत्रराजकी परम्परा सृष्टिके आदिमें भगवान्, श्रीसीताजी, श्रीहनुमान्जीके द्वारा ब्रह्मादि ऋषियोंमें सत्ययुगमें प्रचरित होकर बसिष्ठ आदि ऋषियोंमें त्रेतामें प्रचरित होकर, श्रीव्यास आदि ऋषियोंमें द्वापरमें प्रचरित होकर अविच्छिन्न रूपसे आजतक इस भूमण्डलमें प्रचरित है।

यदि कोई यह पूछे कि सर्वप्रथम श्रीराममन्त्र श्रीजानकीजीको मिलनेके कारण श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवोंका श्रीसम्प्रदाय कैसे ?

तो इसका एक सर्वश्रेष्ठ अन्तिम उत्तर यह है कि जानकी अर्थात् जनक की कन्या, यह अर्थ यहाँ अभिप्रेत ही नहीं है। जनक का अर्थ है सृष्टि उत्पादक परमात्मा राम। उनकी अर्थात् जनक (राम) की अनादिशक्ति ही जानकी शब्दसे कही गयी है। वही शक्ति सीतापदवाच्य भी है– सीता या जानकी परब्रह्म की विवाहिता पत्नी है यह मानना भारी भ्रम है। उपासक अपने देव की प्रत्येक वस्तुका स्वेच्छासे नाम और रूपकी कल्पना कर सकता है और कर लेता है।

* अवतार चरित्र *

यज्ञभूमिसे प्राकट्य। जीवोंके उद्धार हेतु अवतार। पालक माता-पिता महारानी सुनयना और निमिकुलराज श्रीजनकजी। अयोनिजा और लोकाभिराम श्रीरामकी नित्यसहचरी तथा आह्लादिनी शक्ति। **स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये** इस श्रीमद्वाल्मीकि रामायणवचनके अनुसार प्रभु श्रीरामजीको दण्डकारण्यमें कान्तासम्मिततयोपदेश। श्रीरामसे प्रार्थनाकर अपने ही अपकारी काकासुर (जयन्त) को जीवनदान दिलाना। वैरके बिना राक्षसवधकी श्रीरामप्रतिज्ञाको ध्यानमें रखकर और उन्हें उस राक्षसवधरूपदोषसे श्रीरामको मुक्त रखने हेतु लंकेश रावण के कारागारको स्वीकार करना। यह श्रीसीताजीके अनन्यशेषत्वका प्रमाण है। अग्निपरीक्षा में सतीत्वपरीक्षा यह अनन्य भोग्यत्वका प्रमाण है। सीतानिर्वासन और पातालप्रवेश यह अनन्यार्हत्व का प्रमाण है। श्री हनुमान्जीको उत्तम चरित्रकी शिक्षा देना। **रामायणं कृत्स्नं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्** इस श्रीरामायणोक्त प्रमाणके अनुसार समस्त श्रीरामायण सीता चरित्र ही है। अतः अवतार चरित्रमें वे नारीजगत्की मेखला कही गयी हैं **–नारीणामुत्तमा वधूः।**

इस सम्प्रदायपरम्पराका स्पष्ट वर्णन 'वाल्मीकि संहिता' के तृतीय अध्यायमें लिखा हुआ है ।

यथा– श्री सीता रामतः प्राप सा ददौ वायुसूनवे ।
ब्रह्मणे स ददावित्थं मन्त्रराजपरम्परा ॥

इन सब प्रमाणोंसे प्रत्यक्ष हो गया कि श्रीराममंत्रराजकी परम्परा सृष्टिके आदिमें भगवान्, श्रीसीताजी, श्रीहनुमान्जीके द्वारा ब्रह्मादि ऋषियोंमें सत्ययुगमें प्रचरित होकर वसिष्ठ आदि ऋषियोंमें त्रेतामें प्रचरित होकर, श्रीव्यास आदि ऋषियोंमें द्वापरमें प्रचरित होकर अविच्छिन्न रूपसे आजतक इस भूमण्डलमें प्रचरित है ।

यदि कोई यह पूछे कि सर्वप्रथम श्रीराममन्त्र श्रीजानकीजीको मिलनेके कारण श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवोंका श्रीसम्प्रदाय कैसे ?

तो इसका एक सर्वश्रेष्ठ अन्तिम उत्तर यह है कि जानकी अर्थात् जनक की कन्या, यह अर्थ यहाँ अभिप्रेत ही नहीं है । जनक का अर्थ है सृष्टि उत्पादक परमात्मा राम । उनकी अर्थात् जनक (राम) की अनादिशक्ति ही जानकी शब्दसे कही गयी है । वही शक्ति सीतापदवाच्य भी है– सीता या जानकी परब्रह्म की विवाहिता पत्नी है यह मानना भारी भ्रम है । उपासक अपने देव की प्रत्येक वस्तुका स्वेच्छासे नाम और रूपकी कल्पना कर सकता है और कर लेता है ।

* अवतार चरित्र *

यज्ञभूमिसे प्राकट्य । जीवोंके उद्धार हेतु अवतार । पालक माता-पिता महारानी सुनयना और निमिकुलराज श्रीजनकजी । अयोनिजा और लोकाभिराम श्रीरामकी नित्यसहचरी तथा आह्लादिनी शक्ति । **स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये** इस श्रीमद्वाल्मीकि रामायणवचनके अनुसार प्रभु श्रीरामजीको दण्डकारण्यमें कान्तासम्मिततयोपदेश । श्रीरामसे प्रार्थनाकर अपने ही अपकारी काकासुर (जयन्त) को जीवनदान दिलाना । वैरके बिना राक्षसवधकी श्रीरामप्रतिज्ञाको ध्यानमें रखकर और उन्हें उस राक्षसवधरूपदोषसे श्रीरामको मुक्त रखने हेतु लंकेश रावण के कारागारको स्वीकार करना । यह श्रीसीताजीके अनन्यशेषत्वका प्रमाण है । अग्निपरीक्षा में सतीत्वपरीक्षा यह अनन्य भोग्यत्वका प्रमाण है । सीतानिर्वासन और पातालप्रवेश यह अनन्यार्हत्व का प्रमाण है । श्री हनुमान्जीको उत्तम चरित्रकी शिक्षा देना । **रामायणं कृत्स्नं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्** इस श्रीरामायणोक्त प्रमाणके अनुसार समस्त श्रीरामायण सीता चरित्र ही है । अतः अवतार चरित्रमें वे नारीजगत्की मेखला कही गयी हैं –नारीणामुत्तमा वधूः ।

श्रीहनुमान्जी-३
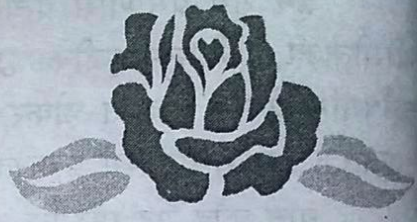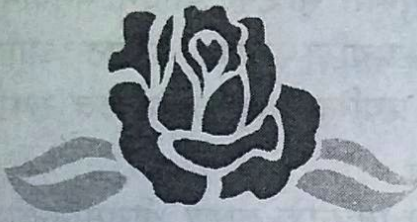
श्रीजानकीभाष्यके आरम्भमें मन्त्रराजपरम्पराके श्लोक प्राप्त होते हैं, जिसमें श्रीहनुमान्जी तृतीय आचार्यके रूपमें वर्णित हैं । यथा-

श्रीरामाख्यं परं ब्रह्म जगज्जन्मादिकारणम् ।
स्वभक्तैर्ध्येयमाप्यं च वन्दे दिव्यगुणाकरम् ॥१॥
श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनीम् ।
तां सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणीं सर्वदेहिनाम् ॥२॥
सीतां स्वादिगुरुं वन्दे शरणागतवत्सलाम् ।
यत्परम्परया लब्धो मन्त्रोऽस्माभिः षडक्षरः ॥३॥
वेदवेदान्त गुह्यार्थो यत्कृपातः प्रकाशते ।
तं सर्वनिगमाचार्यं हनुमन्तं गुरुं भजे ॥४॥

अर्थ - जगत्के जन्मादिकारण, दिव्यगुणोंके केन्द्र, भक्तों द्वारा ध्येय और प्राप्य श्रीराम नामसे प्रसिद्ध परब्रह्मकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

श्रीरामके सान्निध्यमें होनेसे जो जगत् को आनन्दप्रदान करनेवाली हैं उन सभी देहधारियों की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली शरणागतवत्सला अपनी आदिगुरुकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से हम लोगोंको षडक्षर मंत्रकी प्राप्ति हुयी ॥२-३॥

जिनकी कृपासे वेद-वेदान्तका रहस्यार्थ (जानकी भाष्य) प्रकाशित हो रहा है, उन सर्ववेदाचार्य गुरुदेव श्रीहनुमान्जीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥४॥

वस्तुतः श्रीहनुमान्‌जी महाराज केवल श्रीरामदास ही नहीं वल्कि सभी वेद उनकी भूरि-भूरि बिरुदावली गा रहे हैं । श्रीरामचरितके तो वे प्राण हैं ।

ऋग्वेदके प्रथममंत्र **अग्निमीडे पुरोहितम्** में चान्द्रभाष्यकार कहते हैं - 'अग्नि शब्द वायुपुत्र हनुमान्‌का वाचक है । वही इस मंत्रके प्रतिपाद्य देवता हैं' । श्रीहनुमान्‌जीका परिचय श्रीरामचरित्रके साथ ही है ।

निरुक्तकार यास्कमुनि ऋग्वेद के १/१९/१ मंत्रकी व्याख्यामें डिण्डिमघोषके साथ प्रस्तुत कर रहे हैं-

कमन्यं मध्यमदेवमवक्ष्यत ।

इस सूक्तमें मध्यमस्थान वायुदेवके संकल्पप्रसूत वायुपुत्र श्रीहनुमान्‌जी ही **अग्नि** शब्दसे प्रतिपादित हैं ।

"अन्यत्र अग्निशब्दका कपिराज हनुमान् अर्थ करनेमें किसीको आशंका करनेका कदाचित् अवसर प्राप्त हो किन्तु ऋग्वेद के १/१९वें सूक्तमें **मरुद्भिरग्न आ गहि** इस नवधा प्रयुक्त मन्त्रके अन्तिमवाक्यमें अग्नि शब्दका अर्थ मध्यमस्थान वायुसे सम्बद्ध वायुपुत्र हनुमान् ही प्रकरणानुसार गृहीत होगा" ।[१] (स्वामी गंगेश्वरानन्द)

श्रीमद्‌भागवतके पञ्चम स्कन्धमें श्रीहनुमान्‌जीको **परमभागवत** कहा गया है । वे आज भी श्रीरामकी षड्‌विधा शरणागतिका चिन्तन कर रहे हैं ।

परमभागवतो हनुमान्..... महाराजाय नमः ॥ -श्रीमद्‌भागवत ५/१६/१-३ ॥

श्री हनुमान्‌जीके समान और किसी श्रीरामभक्तका उदाहरण लोकमें अन्यत्र नहीं है । श्रीरामायणको सुननेके लिए ही वे चिरंजीवी हैं । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके तो मार्गदर्शक ही हैं । चित्रकूटमें शुकरूप धारणकर अपने अकिंचन भक्त तुलसीदासजीको आपने श्रीरामलक्ष्मणका दर्शन कराया है । ऐसे कृपालु आचार्य को कौन नहीं जानता है ?

को नहिं जानत है जग में कपि संकटमोचन नाम तिहारो ।

श्रीरामानुजीयमंदिरोंमें श्रीहनुमान् और श्रीगरुड़देवकी द्वाररक्षककेरूपमें प्रतिष्ठा होती है । इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीके अनादित्व और श्रीरामभक्तिके प्रबल प्रचारक होने का प्रबल प्रमाण प्राप्त होता है ।

टिप्पणी-१ : विशेष जानकारी हेतु वेदों में श्री हनुमान (हनुमान अङ्क-गीता प्रेस) का अध्ययन करें।

श्रीब्रह्माजी-४

लोकपितामह श्रीब्रह्माजी त्रिपाद्विभूतिलोकके नित्यपार्षद श्रीहनुमान्‌जीके शिष्य हैं। यह पढ़ और सुनकर आपको आश्चर्य होगा क्योंकि भ्रमित पुरुष को ही आश्चर्य होता है। श्रद्धामय परमात्माका ज्ञान श्रद्धावान् ही कर सकता है - **जिन खोजा तिन्ह पाइयाँ गहरे पानी पैठ।**

गोस्वामीजी ने लिखा है-

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई॥

तो यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि श्रीब्रह्मा और शंकरजीके गुरु कौन है ?

पूर्व में मैनें स्पष्ट कर दिया है, पुनः प्रसंगवशात् यहाँ भी आवश्यक है। **श्रीराम विजय सुधाकर** में हमारे पूर्वाचार्य स्वामी मधुराचार्यजीने लिखा है कि श्री हनुमान्‌जी श्रीसीताजीके शिष्य हैं - **सीताशिष्यं गुरोर्गुरुम्।**

पुनः श्रीहनुमान्‌जीने श्रीब्रह्माजीको षडक्षर श्रीराममंत्रका उपदेश दिया। यथा-

योयं महाविभूतिस्थो हनूमान् रामतत्परः।
स प्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मन्त्रराजं षडक्षरम्।
-सदाशिव संहिता

पुनः श्रीरामतापनीयोपनिषद् का प्रमाण-

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥

यहाँ श्रीरामजी श्रीशिवजीसे कहते हैं कि पूर्वकालमें हमारी महाविभूति (नित्य विभूति) से तुम्हें और ब्रह्माजीको हमारा षडक्षर मन्त्र प्राप्त हुआ है, अतएव तुम्हारी और ब्रह्माजीकी दो राममंत्रकी परम्परायें पृथ्वीपर प्रचलित हैं ।

जो कोई इन परम्पराओं में से किसी में भी दीक्षित होकर श्री राममंत्रका अभ्यास करेगा वह जीते जी सिद्धिको प्राप्त कर संसार-सागर से तर जायेगा । श्री शिवजीका श्रीरामतारकमन्त्रका प्रमाण श्रीरामस्तवराज (भक्ति भूषण भाष्य) में द्रष्टव्य है ।

महर्षि वाल्मीकिके श्रीरामायण सम्बन्धी रचनाओं में श्रीब्रह्माजीकी विशेष भूमिका रही है, उसकी भी एक परम्परा है । सर्वप्रथम श्रीरामायणके कर्ता ब्रह्माजी हैं । उनसे प्राप्तकर देवर्षि नारदजीने श्रीवाल्मीकिको इसका ज्ञान प्रदान किया । **तपः स्वाध्याय इत्यादि** श्लोकों के अभिप्राय से यह स्पष्ट होता है ।

मत्स्यपुराणमें श्रीब्रह्माजीके रामोपासक होनेका प्रबल प्रमाण है । उसका उद्धरण देकर श्रीरामायण शिरोमणिटीकाकारने यह सिद्ध किया है । यथा-

वाल्मीकिना च यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।
ब्रह्मणा चोदितं तच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
व्याहृतं नारदेनैव वाल्मीकये निवेदितम् ।
इत्यादि वचनैर्ब्रह्मणो रामोपासकत्वं बोधतम् । -वा.रा. शिरोमणिटीका

अवतार चरित्र

द्वादश महाभागवतों में से एक । श्री विष्णुके नाभिकमलसे उत्पत्ति । श्रीरामजीकी तपस्यासे प्राप्त लोकसृष्टि करनेकी क्षमता । त्रिदेवोंमें एक । श्रीरामायणरचना हेतु महर्षि वाल्मीकिके प्रेरक । श्रीस्वामी बोधायनाचार्य तथा स्वामी अनन्तानन्दाचार्यके रूपमें अवतरित । श्रीमद्वाल्मीकिरामायणमें श्रीरामस्तवन । इन्हींकी प्रेरणासे श्रीरामकार्य हेतु देवसमूहका वानर भालुकेरूपमें अवतरित होना । स्वयं श्रीजाम्बवान्के रूपमें अवतरित । वेदों और पुराणोंमें आदिकविके रूप में प्रतिष्ठित होना । भगवान श्री रामने सर्वप्रथम इन्हींको वेदज्ञान प्रदान कर अपने स्वरूप का ज्ञान कराया है– **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् इत्यादि (श्वेत-३०)** । वेदोंमें हिरण्यगर्भ के नामसे प्रसिद्ध । श्रीमद्भागवतके द्वितीय वक्ता । मानसपुत्र श्री वसिष्ठजीको श्रीरघुवंशके पौरोहित्यकर्ममें प्रेरितकर उन्हें श्रीराममंत्रकी दीक्षा प्रदान करना । तथा उन्हें श्रीरामचरणोंमें अनन्य निष्ठावान होनेका आशीर्वचन प्रदान करना । लोकमें प्रवहमती महानदी भगवती गंगा और सरयूजीके मूल संग्राहक (एक नखमणि निर्गता और अपर नेत्रजा) हैं । सनकादि और नारदजीके मानसपिता और आचार्य । श्रीहनुमानजीसे राममंत्रकी दीक्षासे दीक्षित ।
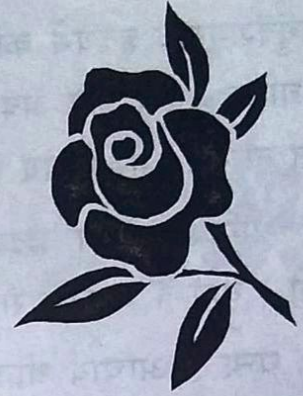
श्रीवसिष्ठजी-५

वस्तुतः श्रीवसिष्ठजीके समान संसारमें कोई आचार्य नहीं है । जन्मकी भाँति उनका कर्म भी दिव्य है । परमात्मा श्रीरामके आचार्य (कुलगुरु) होने का गौरव भी प्राप्त है । उन्होंने अपने तपःप्रभाव से विधाताकी गतिको भी बाधित कर दिया था; यह उनकी पौरोहित्यकर्ममें कुशलता थी । **योगः कर्मसु कौशलम्** का यह अनुपम उदाहरण है । उनका ब्रह्मतेज त्रिभुवन में असह्य था । महातपस्वी और अद्‌भुत क्षमतावान् श्रीविश्वामित्रको इसका ज्ञान तब हुआ जब घोर तपस्या से अर्जित अनन्त शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करके भी महर्षि श्रीवसिष्ठके ब्रह्मदण्डके समक्ष वे हतप्रभ हो गये, (सम्भवतः त्रिदण्ड) अतः अन्तिममें विचार किया ।

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥ -वा.रा. १/५६/२३ ॥

विश्वामित्रने उनके सभी सौ पुत्रोंकी निर्मम हत्यायें कर दी अथवा करवा दी थी किन्तु उन महर्षिकी क्षमा श्रीहत नहीं हुई !

जो ब्रह्मगायत्रीके ऋषि हैं । जो अपरसृष्टिरचना करनेमें भी सक्षम हैं, ऐसे प्रभावशाली विश्वामित्रजीने श्रीब्रह्माजीसे कहा - जब तक श्रीवसिष्ठजी महाराज मुझे ब्रह्मर्षि होनेका प्रमाण नहीं देते, तब तक मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता हूँ ।

सूर्यवंशके राजा निमि और त्रिशंकुके प्रसंगमें महर्षि श्रीवसिष्ठसे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि पुरोहित अथवा गुरुको स्वसिद्धान्तमें दृढ़ होना चाहिए ।

राष्ट्रके नामपर एकस्वरसे राष्ट्रभक्तिका परिचय देना चाहिए, यही श्रीरामभक्तिका सिद्धान्त है। यह मनोहारी दृश्य मुनि वसिष्ठके जीवनमें देखो जिसने उनका वंशनाश कर दिया था, वही विश्वामित्र जब रघुवंशकी सभामें पधारते हैं तो उस समय ब्रह्मर्षि श्रीवसिष्ठ उन्हें हृदयसे लगा लेते हैं। रघुवंशगुरुके हृदयमें कोई मतभेद नहीं, कोई दुराव नहीं, कोई प्रतिक्रिया (बदले की भावना) नहीं, बल्कि उनके प्रति अपनत्व है, करुणासे हृदय पूरित है ! भरी सभामें वे महर्षि विश्वामित्रकी अद्भुत तपस्या और प्रभाव का हार्दिक वर्णन करते हैं।

श्रीविश्वामित्रका हृदय आज कृतज्ञतासे शीतल हो गया। ऋषि संस्कृति आज धन्य हो गयी। यही है भारतके सन्तोंकी देन।

धन्य हैं आचार्य श्रीवसिष्ठ ! उन्होंने अपने शिष्य श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके साथ भेज दिया, जिससे असुरदमन तथा यज्ञरक्षा सम्पन्न हुई।

(संक्षेप में एक राजर्षिका ब्रह्मर्षिके रूप में परिणत होना यह अध्यात्मकी दिग्विजय है। इसीलिए मानवसमाजमें क्षमाशीलता और विवेकको प्रधान माना गया है।)

इस प्रकार नानापुराण निगमागमसम्मत श्रीरामचरित मानस में प्रभु श्रीरामके समक्ष वे महर्षि वसिष्ठजी अपना हृदय खोलकर रख देते हैं। यथा-

उपरोहित्य कर्म अति मंदा। वेद पुरान सुमृति कर निन्दा ॥
जब न लेउँ मैं तब विधि मोहीं। कहा लाभ आगे सुत तोहीं ॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहैं रघुकुल भूषन भूपा ॥
तव मैं हृदयं बिचारा योग यज्ञ व्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धन्य न मो सम आन ॥
जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सव साधन कर यह फल सुन्दर ॥

x x x

नाथ एक वर मांगउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥

ब्रह्मर्षि श्रीपराशरजी-६

श्रीपराशरजी श्रीवसिष्ठपुत्र शक्तिके आत्मज हैं । राजर्षि विश्वामित्रने जब कल्माषपादके शरीरमें किंकर नामके राक्षसका प्रवेश करा दिया था तो उसने शक्तिको खा लिया था । उस समय यह अपनी माता अदृश्यन्तीके गर्भमें स्थित थे । कुलके प्रभावके कारण तथा अपने पिताके सत्संगसे इन्हें गर्भमें ही वेदज्ञान हो गया था । बारह वर्षोंतक ये गर्भमें ही स्थित थे । पुत्रवियोगसे व्याकुल अपने पितामह श्रीवसिष्ठजीको इन्होंने गर्भसे ही आश्वासन दे दिया था, जिससे श्रीवसिष्ठजी आत्महत्या करनेसे रुक गये थे। पराशरका अर्थ है कि जो मरते हुयेको बचा ले । इसीसे इनका पराशर नामकरण हुआ । यथा-

पराशुः स यतस्तेन वशिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥

-महाभारत १/१७७/३

श्रीविष्णुपुराण और श्रीमहाभारतके अनुसार इन्होंने राक्षसमारणका अनुष्ठान किया था । सैंकडों राक्षसोंके नष्ट हो जानेपर महर्षि पुलस्त्यके निवेदनपर इन्होंने उस यज्ञको रोक दिया था ।

भारतीय ग्रन्थोंमें श्रीपराशर ऋषि बहुत प्रभावशाली माने जाते हैं । बहुत दीर्घजीवी भी हैं ।

यह ऋग्वेदके १०५ मन्त्रोंके द्रष्टा भी हैं । विद्वज्जगत्‌में आज भी इनके ग्रन्थोंकी पूर्ण मान्यता है । मनीषियोंने कलियुगके प्राणियोंको **पराशरस्मृतिके** वचनपालनकी आज्ञा प्रदान की है - **कलौ पराशर स्मृतिः ।**

यह सभी धर्मशास्त्रोंकी अपेक्षा सरल और सहज स्मृति है ।

इन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है, जिसका अध्ययन-अध्यापन बहुत दुर्लभ है । यथा - (१) **बृहत् पराशर होराशास्त्र (ज्योतिष ग्रन्थ १२०० श्लोकों में) (२) बृहत्पराशरीय धर्म संहिता (३३००० श्लोकों में) (३) लघु पाराशरी (४) पराशरस्मृति (५) वास्तुशास्त्र (६) नीति शास्त्र (इसका उल्लेख्र चाणक्यने किया है) (७) पराशर संहिता-वैद्यक (८) पराशर पुराण (९) विष्णु महापुराण (१०) पराशर गीता (महाभारत शान्ति पर्व)**

धर्मके प्रचार-प्रसार हेतु इन्होंने जहाँ-जहाँ आश्रमोंका निर्माण किया, सहस्रबाहु और उसके वंशजोंने उन सभीको उजाड़ दिया । यह शोधका विषय है । स्कन्द पुराण - अयोध्या माहात्म्य के प्रमाणसे उनका एक आश्रम श्रीअवधसे पश्चिम लगभग ३० कि.मी. दूर जिला गोण्डा में (श्रीसरयू किनारे) मान्य है । वह पराशर आश्रम आज **परास** ग्रामके रूप में स्थित है । श्रीअवधके प्रामाणिक कुण्डोंमें एक **पराशर कुण्ड** भी वहाँ था । कुछ दिनों पूर्व वह श्रीसरयूकी धारा में समा गया ।

इस प्रकार लाखों वर्षकी अवस्थामें उन प्रतापी ऋषिने भगवदिच्छाका पालन करते हुये मत्स्यकन्या (निषाद की पालित कन्या) को निमित्त बनाकर योगबलसे विष्णु अवतार श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीको पुत्ररूपमें प्राप्त किया ।

प्यारे श्रीरामानन्दीय वैष्णवों ! निम्नलिखित पराशर स्मृति के इसी १ श्लोकका अध्ययन कर लिया जाये तो सम्पूर्ण श्रीवैष्णवसिद्धान्त समझा जा सकता है -

अर्थ पञ्चकतत्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः ।
अकारत्रय सम्पन्ना महाभागवताः स्मृताः ॥

-पराशर स्मृति, ३० ख्र. १०/१०

महाभागवत उसे कहा जाता है जो अर्थपञ्चकके तत्त्व का ज्ञाता हो, पञ्चसंस्कारसे संस्कृत हो और अकारत्रय से संयुक्त हो ।

इसका विवरण निम्नलिखित है–

१. अर्थपञ्चक - स्व = जीव स्वरूप, २. पर = ब्रह्मस्वरूप, ३. उपाय = भगवत्कैंकर्य, ४. विरोधी = अविद्याका स्वरूप, ५. प्राप्य स्वरूप = सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टिरूपा मुक्ति ।

पञ्च संस्कार - १. दासान्त नाम २. तुलसीकण्ठी व माला, ३. ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक ४. धनुर्बाण मुद्राङ्कन ५. तारक मन्त्र । अकारत्रय - अनन्यशेषत्व २. अनन्यभोग्यत्व ३. अनन्य उपायत्व = अर्हत्व ।

श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी-७
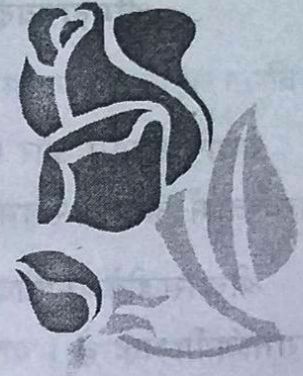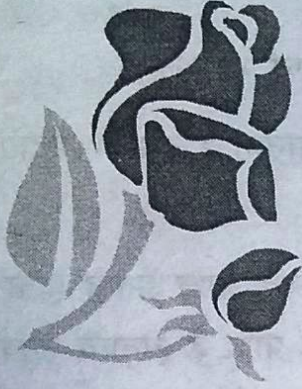
श्रीव्यासजी पराशर ऋषिके आत्मज एवम् शिष्य हैं ऐसा निर्दुष्ट रूपसे मनीषियोंने सिद्ध किया है । इनकी माताका नाम वासवी (सत्यवती) है । यथा-

जातः पराशराद् योगी वासव्यां कलया हरेः ।

-श्रीमद्‌भागवत १/४/१४

द्वापरयुगमें उपरिचर वसु की पुत्री सत्यवतीमें श्रीपराशरके तेजसे श्रीहरिकी ज्ञानकला ही योगी श्रीव्यासके रूपमें अवतरित हुई । श्रीमद्‌भागवत और महाभारत ग्रन्थोंमें इन्हें विप्रर्षि और ब्रह्मर्षि कहा गया है ।

वह दिव्यकन्या सत्यवती महाराज सान्तनुके साथ विवाहसे पूर्व न तो क्षत्रिया ही थी और न ही निषादकन्या ।[x]

भगवान् श्रीविष्णुके अंशावतार होने से और श्यामवर्ण होनेसे तथा यमुनाद्वीपमें उत्पन्न होनेसे इन्हें श्रीकृष्णद्वैपायन कहते हैं तथा एक ही वेद को ४ रूपोंमें विभक्त करने से वेदव्यास अथवा व्यास संज्ञा भी है ।

इनका जन्म स्थान कालपीग्राम (झांसी के समीप उत्तरप्रदेश) में है ।

इनकी स्मारकगद्दी आज भी श्रीरामानन्दसम्प्रदायके अधिकारमें है । गीतानन्दभाष्यकारने सातवें आचार्यके रूपमें इनकी वन्दना की है । यथा-

---

[x] टिप्पणी - सत्यवती और व्यासजीके जन्मरहस्यके विषयमें अयोध्यास्थ पंडित श्रीबैजनाथ द्विवेदीके महर्षि वाल्मीकि नामक ग्रन्थ का अवलोकन करें ।

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्ठावृषी,
योगीशञ्च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गधराद्यान्यतीञ्,
श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥
-गीतानन्दभाष्य मं. श्लोक

यद्यपि श्रीराम और श्रीकृष्णतत्त्वमें भेदबुद्धि रखना नितान्त अज्ञानता है तथापि अवतारभेदसे लीलाचरित्रोंमें आन्तर्य स्वाभाविक है, अस्तु ।

श्रीव्यासजीके अष्टादश पुराणों और श्री महाभारतादि ग्रन्थोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे श्रीरामाश्रयी भक्त थे । यह श्रीरामभक्ति उन्हें पितृपरम्परासे स्वभावतः प्राप्त है अतएव उनके सभी ग्रन्थोंमें श्रीरामचरित्र अछूता नहीं रहा । यह उनके हृदयकी स्वाभाविकता है । महर्षि वाल्मीकिकृत श्रीरामायणका उनपर विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

श्रीमद्भागवतमें स्थल-स्थलपर श्रीरामतत्त्वका प्रतिपादन श्रीवेदव्यासजीके हृदयका उच्छलन है । यथा-

१. एते चांशकलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् । -श्रीमद्भा० १/३/२८

अस्य पुंसो रघुनाथस्य एते अंशकलाः वृन्दावनविहारी स्वयं रघुनाथ एव इत्यर्थकस्य सङ्गतिः । –वा.रा. शिरोमणिटीका ।

अर्थात् अस्य पद में जो षष्ठी विभक्ति का दर्शन है, उसका अर्थ है अस्य - रघुनाथस्य । स्वयं रघुनाथ ही श्रीवृन्दावनविहारी हैं ।

२. **अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य० ॥ २/७/२३**

यहां कलेशः का अर्थ है - कलानाम् ईशः - कलाओंके स्वामी श्रीराम ।

३. पञ्चमस्कन्धके १६वें अध्यायमें भगवान् श्रीवासुदेव (श्रीराम) की षड्विधाशरणागतिका लोकशिक्षायुक्त वर्णन है । वहींके १ श्लोकको देखिये-

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥

इस श्लोकमें श्रीरामजीको विशुद्धज्ञान रुप, अद्वितीय और अपने प्रकाश से त्रिगुणात्मिका मायासे रचित जाग्रत, स्वप्न आदि अवस्थाओंको समाप्त कर देने वाला कहा गया है। श्रीरामजी सर्वान्तरात्मा, परमशान्त, सुधीजनों द्वारा जानने योग्य और नाम-रुप से रहित तथा अहम् से शून्य हैं, यह कहा गया है।

और भी नवमस्कन्ध में श्रीरामोपाख्यान, ११ वें स्कन्ध में वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् आदिमें श्रीरामके परात्परत्वका दर्शन होता है।

सीतापतिर्जयति लोकमलध्नकीर्तिः -श्रीमद्भा० ११/४/२९

यहाँ तो श्रीव्यासजी महाराजने श्रीरामनिष्ठामें हृदय खोलकर रख दिया है।

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे आदि दशम स्कन्ध के रहस्य का अध्ययन करना चाहिये।

श्री दयाशंकर त्रिपाठीजी सपत्नीक स्वामी रामानन्दाचार्य सप्तशताब्दी प्रचार में वर्तमान आचार्यजी का पूजन करते हुए (कैलाशपूरी दिल्लीं)

श्री शुकाचार्यजी-८

व्यासपत्नी पिङ्गलाके गर्भसे परमहंसशिरोमणि श्रीशुकाचार्यजीका जन्म हुआ है । इनके जन्मका रहस्य अद्भुत है ।

१ - **कौशिकी संहिता** के अनुसार अमरनाथकी गुफामें भूतभावन भगवान श्रीशिवजी एकबार श्रीपार्वतीजीको अधिकारिणी समझकर उन्हें अमरकथा सुना रहे थे । संयोगवशात् उन्हें निद्रा आ गई । समीपमें ही एक शुकाण्ड पड़ा था, उस अमरकथाश्रवणके प्रभावसे उसमें चेतनता आ गई । वह एक दिव्य शुकशावकके रुप में परिणत होकर उस अमरकथाका श्रवण करते हुये हुँकारी भरने लगा । जब शंकरजीको यह ध्यान आया कि पार्वतीजी तो सो रही हैं तो इनके अतिरिक्त दूसरा और कौन है ?

समक्ष देखा तो एक मनमोहक शुकशावक ! अनधिकारी और अदीक्षित प्राणीने छलसे इस रहस्यकथाका श्रवण कैसे कर लिया ? अतः उन्होंने उसके ऊपर त्रिशूल का प्रहार कर दिया । अमरकथाश्रवणके प्रभावसे उसमें यौगिकशक्ति भी आ गयी थी, अतः वह भागता हुआ निद्रामग्ना श्रीव्यासपत्नीके मुखद्वारसे गर्भमें प्रवेश कर गया । ब्राह्मणीवधके भयकी आशंकासे वह दिव्य शिवास्त्र वहाँ रुक गया ।

२. **देवी भागवत** के अनुसार श्रीव्यासजीने उत्तराखण्ड (व्यास गुफा) में शिवजीकी महती तपश्चर्या की । शिवजीके प्रसन्न होनेपर उन्होंने स्वरचित श्रीमद्भागवतके सम्यक् प्रचार-प्रसारहेतु उन्हीं (शिवजी) को अपने पुत्र होनेका वरदान मांगा, अतः श्रीतारकमन्त्रके प्रधान अनुष्ठाता महावैष्णव श्रीशिव ही शुकरुपमें व्यासपुत्र होकर अवतरित हुये ।

१६ वर्षोंतक वे मातृगर्भमें ही रहे । जीवनकी शेष अवस्थामें पुत्रजन्मोत्सवकी अभिलाषासे व्यासजीका पूतान्तःकरण ललक रहा था अतः उनके बहुत आग्रह पर उस गर्भस्थ शिशु का उच्चारण हुआ कि गर्भ से बाहर निकलते ही मुझे भगवत्-दर्शन कराओ अन्यथा मुझे माया लग जायेगी ।

इस प्रकार श्रीद्वारकाधीश श्रीकृष्ण का प्रथम दर्शन श्रीशुकजी को प्राप्त हुआ ।

श्रीशुकदेवजीमहाराजकी वन्दना करते हुये रोमहर्षणनन्दन श्रीसूतजी महाराज **यं प्रव्रजन्तम्** में कहते हैं कि पुत्र अपने पितासे भी ज्ञानी है । जन्मसे ही वैराग्यवान् और स्थितप्रज्ञ है । श्रीराममंत्र और श्रीरामभक्ति इन्हें भी पितृपरम्परा से प्राप्त है, शिवावतार तो हैं ही ।

ध्यान रहे कि यह सामान्य परम्परा नहीं है । वर्तमानमें इस पर कुचोद्य करना बौद्धिक जड़ता कही जायेगी । वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका उत्तराधिकार था, वर्तमान की भांति मठ, मन्दिरों की महान्ताई की नहीं ।

श्री हरिधाम पीठ अयोध्याके आराध्य भगवान

श्री रामलक्ष्मण, माता जानकीजीके सानिध्यमें आचार्यश्री

श्रीबोधायन (पुरुषोत्तमाचार्यजी)-९
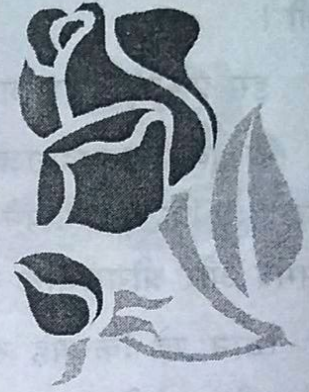
श्रीबोधायनाचार्यजीका जन्मस्थान प्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थ सीतामढीमें हुआ था । मिथिला प्रान्तमें **बोधायन सर** उनकी ऐतिहासिकता का प्रतीक है । दार्शनिक सार्वभौम स्वामी वासुदेवाचार्यजीने इसका शोध किया था । पंडित शंकरदत्तकी धर्मभार्या चारुमतीकी कुक्षि से इनका जन्म हुआ था । ये श्रीब्रह्माजीके अवतार माने जाते हैं । इनका नाम पुण्डरीक था किन्तु वर्ष के लघुभ्राता होने के कारण इन्हें उपवर्ष तथा हलस्थली में जन्म होनेसे हलभूति भी कहा जाता है ।

अल्पावस्थासे ही इनमें प्रौढ पांडित्य होने से तत्कालीन विद्वानोंने इन्हें भगवान् बोधायन के नाम से विभूषित किया था । मगधदेशके राजपुरोहित पंडित श्रीदेवदत्तजीने अपनी एकमात्र कन्या विद्यावतीके साथ इनका विवाह भी कर दिया था किन्तु अल्प अवधि में ही वैराग्य धारण कर गुरु के अन्वेषण हेतु भूमण्डल पर विचरण करने लगे । कठिन तपश्चर्या के उपरान्त श्रीशुकाचार्यजीने दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया पश्चात् श्रीरामतारकमन्त्रकी दीक्षा और त्रिदण्ड धारण कराकर इनका नाम **बोधायन** रखा ।

पुनः आचार्यश्री के निर्देशानुसार इन्होंने श्रीव्यासजीके ब्रह्मसूत्रों पर **बोधायन वृत्ति** लिखी ।

तीर्थभ्रमणके समय जब ये श्रृंगवेरपुर पधारे तो वहाँके समीप प्रतिष्ठानपुरमें एक सारस्वत ब्राह्मण अपने मृतकपुत्रके शवको गोदमें लेकर करुण विलाप कर रहा था । स्वामीजी को दया आ गई और उस ब्राह्मणसे कहा कि यदि इसे मेरा शिष्य होनेकी आप प्रतिज्ञा करो तो हे ब्राह्मणदेव ! मैं इसे जीवित कर दूँगा । उसने स्वीकार किया और वह जीवित हुआ । आगे चलकर वही जगद्गुरु गङ्गधराचार्यजी के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

स्वामी बोधायनाचार्यजीने इस प्रकार चतुर्दिक् तीर्थोंका भ्रमण करते हुये धर्म-प्रचार किया। दक्षिण भारतमें भी उनके द्वारा षडक्षर रामतारकमन्त्र और श्रीमद्विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका प्रचार हुआ जिसका ज्वलन्त प्रमाण आज भी प्राप्त है।

कहते हैं कि श्रीतोताद्रिमठके प्रबन्धक तत्कालीन राजाने उनसे प्रभावित होकर उस मन्दिरको उन (बोधायनाचार्य) के हाथों में सौंप दिया। स्वामीजीने कुछ दिनोंतक उसका संचालन किया, पश्चात् अपने शिष्योंको सौंपकर गुजरात प्रान्तकी ओर प्रस्थान किया। वहाँके तीर्थोंके दर्शन करते हुये सूरतके समीप तापी नदीके तटपर स्थित महर्षि गौतम ऋषिकी निर्वाण-स्थली का उन्होंने निरीक्षण किया। वहीं पर योगद्वारा इस नश्वर शरीरका विसर्जन कर दिया। वह आज भी **श्रीबोधायन आश्रम** के नामसे प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार दक्षिण भारतके श्रीतोताद्रिमठकी व्यवस्था जो आज रामानुजियों के हाथमें है वह वस्तुतः पूर्वोक्त श्रीराममंत्रकी गादी है। उस गादीकी श्रीराममंत्रपरम्परा आज भी अक्षुण्ण है। उस गद्दीके आचार्य अपने शिष्योंको दीक्षित करते समय सर्वप्रथम षडक्षरमंत्र तत्पश्चात् श्रीमन्नारायण अष्टाक्षरमन्त्र प्रदान करते हैं।

आपके ग्रन्थ हैं - (१) **बोधायन वृत्ति (पूर्व मीमांसा)** (२) **बोधायन वृत्ति (ब्रह्म सूत्र)** (३) **बोधायन वृत्ति (देव मीमांसा)** (४) वे. रहस्य (५) **बोधायन धर्मशास्त्र** (६) **बोधायन गृह्यसूत्र** (७) **बोधायन धर्म सूत्र** (८) **बोधायन गीता (रामायण रहस्य) आदि।**

वर्तमानमें श्रौतसूत्र, गृह्य और बोधायन स्मृति ये तीन ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं और सब कालके गालमें समा गये हैं। विभाजनके पूर्व मेहरचंद लक्ष्मणदास (संस्कृत पुस्तक विक्रेता - लाहौर) की १९३३ के सूचीपत्रसे उनके कुछ और ग्रन्थोंका पता चलता है। दुर्भाग्यसे इस विषयमें शोध का अभाव खटक रहा है!

श्रीमच्छङ्कराचार्य और श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजी महाराज ने अपने-अपने ब्रह्मसूत्र भाष्योंमें इन्हें भगवत्पदसे विभूषित किया है। श्रीभाष्यकर्ता स्पष्ट लिखते हैं - **भगवद् बोधायनकृतां विस्तीर्णाम्** इसीके आधारपर उनकी श्रीभाष्य रचना है, ऐसी अगाध श्रद्धा।

बोधायनाचार्य का समय।

ये सूत्राष्टाध्यायी व्याकरणके कर्ता महर्षि पाणिनिके समकालीन हैं जो ईसा पूर्व चौथी/पांचवी शताब्दी है, ऐसी लगभग सभी इतिहासकारों की मान्यता है। लोकमान्य श्रीतिलक और डॉ. भंडारकर आदिने यही निश्चित किया है।

जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्यजी-१०

श्रीस्वामी गंगाधराचार्यजीके पिता सरयूपारीण ब्राह्मण श्रीरामनारायण शुक्ल और माता श्रीमती कमलादेवी थीं । प्रयाग के समीप प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में जन्मस्थान हैं । समावर्तनके उपरान्त गुरुकुलसे आकर माता-पिताकी सेवा करते हुये उसी क्षेत्रमें वे अध्यापन कार्य कर रहे थे । श्रवणकुमारकी भांति वे मातृ-पितृभक्त थे, अतः असमयमें उनकी मृत्यु हो जाने पर वे दम्पती पुत्रवियोगमें अत्यन्त व्याकुल थे । महर्षि बोधायनाचार्यने उसी समय आकर उन्हें जीवनदान दिया और उनके माता-पिताको ब्रह्मज्ञान देकर कृतार्थ कर दिया । उनके समक्ष ही उन दम्पतीने योगाग्नि द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लिया । पश्चात् स्वामीजीने गंगाधराचार्यजीको श्रीराममंत्रकी दीक्षा आदि पञ्चसंस्कारसे सम्पन्न कराकर श्रीमद्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त आदि सच्छास्त्रोंका ज्ञान कराया । भयंकर तपस्या करके गंगाधराचार्यजीने श्रीसीताराम लक्ष्मण और श्रीहनुमानजीका दर्शन प्राप्त किया । उनके त्याग और वैराग्यकी प्रसिद्धि समस्त भूमण्डलमें फैल गयी थी । अनेक राजा-महाराजाओंको प्रभावितकर इन्होंने वैदिकधर्मको सुरक्षित रखा था । इनकी जीवित अवस्था तक बौद्धधर्मका साम्राज्य स्थापित नहीं हो पाया था । विन्दुसार भी इनका शिष्य था । कुणाल ने तो अपने पुत्रका नामकरण इन्हीं के नाम पर किया था । इनकी समाधि सिन्धु प्रान्त में है ।

जगद्गुरु सदानन्दाचार्यजी-११

अशोक सम्राट्के राज्यकालमें इनका जन्म गढ़मुक्तेश्वरमें हुआ था। माता मरालिका और पिता श्रीदशरथजीके यह एकमात्र सन्तान थे। स्वामी सदानन्दाचार्यजी श्रीरामभक्तिके साथ राजनीतिके भी पंडित थे। बौद्धोंको राजकीयसंरक्षण भले ही प्राप्त था किन्तु इन्होंने उनके विरुद्ध बचपनसे ही संगठन करना प्रारम्भ कर दिया था। पिताकी एकमात्र सन्तान थे ही अतः उनकी मृत्युके उपरान्त गृहासक्तित्यागकर इन्होंने स्वामी गङ्गाधराचार्यजी का शिष्यत्व स्वीकार कर अशोकसे संघर्ष ठान लिया था। सम्राट्ने इनका देशनिष्काशन कर दिया था। उस समय इन्होंने महादार्शनिक महर्षि पतञ्जलि से भेंट कर देशकी परिस्थिति से उन्हें अवगत कराया था। उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापितकर बौद्धोंके विनाशकी योजना बनाई। परिणामतः उससमय भी इन वैष्णवाचार्यों के योगदानसे उस समय भी ब्राह्मणधर्म **(वेदधर्म)** सुरक्षित रहा। इन्होंने अपने जीवनके शेषभागको अब अष्टाङ्गयोग समाधि से जोड़ दिया था। गिरनार (सह्याद्रि) की कन्दरा में तप करते हुये वे महापुरुष साकेतवासी हो गये। उक्त कंदरा वर्तमानमें **बाबा प्यारे राम का मठ** के नाम से जानी जाती है।

जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी-१२
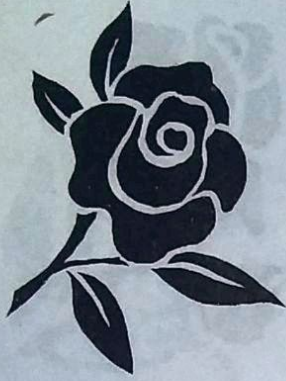
इनका जन्मस्थान चित्रकूटमें कामदगिरि परिक्रमाके पास एक गांव में है । इनकी माताका नाम पद्मजादेवी और पिताश्रीका नाम कल्पनाथ मिश्र था, जो पूर्व मीमांसा के प्रकाण्ड विद्वान थे । आचार्यश्रीका पूर्वनाम रुक्मिणीरमण मिश्र था । पिताश्री कल्पनाथ मिश्रजीने श्री रामयज्ञका अनेक अनुष्ठान किया था । उसीके फलस्वरुप इन आचार्यश्री का जन्म हुआ था । १२ वर्षकी अवस्था तक इन्होंने अपने पिताश्री से ही वेदवेदांगोंकी शिक्षा प्राप्त की थी । इनके मातामह श्रीभवभूति उपाध्यायजी काशीके प्रकाण्ड विद्वानोंमेंसे एक थे । उन्हींसे इनका विधिवत् अध्ययन हुआ था । २० वर्षकी आयुमें काशीके प्रसिद्ध सौत्रान्तिक अमरकीर्ति पर इन्होंने शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त की थी । इस विजयके उपलक्ष्यमें वहाँकी विद्वत्सभामें इनका सम्मान हुआ था ।

इस प्रकार ये सामगान और शास्त्रार्थ कलामें पूर्ण प्रवीण होकर तथा **सारस्वत सार्वभौम** की उपाधि प्राप्तकर देश और धर्मकी सेवाहेतु देशाटन को चल दिये । उससमय श्रीरामभक्तिके परमप्रचारक और बौद्धोंसे संघर्षमें रत स्वामी सदानन्दाचार्यजीके व्याख्यानोंसे प्रभावित होकर इन्होंने विक्रम संवत् से ५५ वर्ष पूर्व उनसे विरक्त दीक्षा प्राप्त की ।

अब स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजीने अपने गुरुदेवको धर्मरक्षाका आश्वासन देकर श्रीरामभक्तिको देशव्यापी बनानेका संकल्प लिया । बौद्धोंके प्रबलविरोधके बावजूद भी इन्होंने श्रीवैष्णवताका संदेश देशके कोने-कोनेमें पहुँचाया ।

इस अभियानका परिणाम यह हुआ कि बौद्धोंकी एक भक्तिसमन्वितशाखा महायान का जन्म हुआ । श्रीवैष्णवधर्मके जागरणसे बौद्ध लोग हतप्रभ हो गये और हजारों बौद्धिष्ट स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजीसे रामनामकी कण्ठी बंधा लिए । सनातनधर्मके उस नैराश्यकालमें श्रीस्वामीजीका ऐसा प्रबलप्रताप उदित हुआ कि भक्तिका सिद्धान्त देशव्यापी हो गया ।

श्रीवैष्णवधर्मका ही यह प्रभाव देखकर बुद्धकी मूर्तिपूजाका आविर्भाव हुआ । किन्तु वेदविरुद्ध होनेकेकारण द्विजेतरोंकी संख्या उसमें बढ़ती गयी और इधर वर्णाश्रमधर्मकी पूर्ण मान्यताकेकारण श्रीवैष्णवधर्म द्विजातितक ही सीमित रहा । धीरे-धीरे राजनीतिक रंग लेकर बौद्धमत विदेशोंमें भी पनपने लगा था । इधर श्रीवैष्णवधर्मका प्रचार-प्रसार भी न्यून नहीं हुआ । श्रीरामभक्तिगंगाकी धवलधाराका अजस्र प्रवाह सम्पूर्ण भारतवर्षको अभिसिंचित करता रहा । जनश्रुतिके अनुसार बृद्धावस्थामें बहुत वर्षोंतक उनका जीवन सौराष्ट्रमें व्यतीत हुआ अन्त में श्रीअवधपुरी में आकर साकेतवासी हो गये ।

श्री हरीधाम पीठका अग्रभाग

जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्यजी-१३

जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्यजीका जन्म भगवान् श्रीकृष्णकी राजधानी द्वारकापुरीके एक ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। माता श्रीमती गोमतीदेवी और पिताजी श्रीहरिशंकर भट्ट थे तथा इन आचार्यश्रीका नाम देवशंकर था। श्री स्वामीजी बचपनसे ही क्रान्तिकारी स्वभावके थे। प्रारम्भिक शिक्षा के समय भी वे बालमित्रों को संगठित कर बौद्धों के विरुद्ध भाषण करते थे। १८ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने काशी में जाकर वेद-वेदांग का सम्यक् अध्ययन किया। शास्त्रार्थ में उनकी बहुत रुचि थी। काशीकी प्रत्येक सभामें वे प्रायः उपस्थित रहते थे। वाक्चातुर्यके कारण विद्वत् समाजमें उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी। देवविद्या में पूर्ण पारंगत हो जाने के पश्चात् उन्होंने देश और धर्मप्रेमके कारण आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतमें रहनेका संकल्प ले लिया। उस समय जगद्गुरु स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजीकी ख्याति बहुत बढ़ी थी। अतः इन्होंने उनसे विरक्त दीक्षा लेकर तथा उन्हीं आचार्यश्रीकी अनुमति से उत्तर भारतसे बौद्धमतके विनाशहेतु काशीसे चल पड़े। उनके साथ अन्य विद्वानोंका भी बाहुल्य था। वे बौद्धों से शास्त्रार्थ करते हुए और उन्हें पराजित करते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तोंमें श्रीराम और विष्णु आदि मन्दिरों की प्रतिष्ठापना कराई। श्रीराम और श्रीविष्णुमहायज्ञोंके अनेक आयोजन भी किये, जिसमें जनसमूहका भारी समर्थन प्राप्त हुआ। उड़ीसामें श्रीवैष्णवधर्मके प्रचारके उपरान्त श्रीस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यजी उनपर बहुत प्रसन्न होकर जगन्नाथपुरी में उन्हें जगद्गुरु पद पर अभिषिक्त कर दिया। अभिषेक के पश्चात् दक्षिण भारत की यात्रा करके वे पुनः अपनी जन्मभूमि द्वारकामें पधारे। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। पुनः सौराष्ट्र में सम्मानित होकर पुष्कर, पंजाब, हिमाचल और नैनीताल आदि होते हुए श्रीअवध में पधारकर उस क्षेत्र में अनेक श्रीराम महायज्ञों का भव्य आयोजन किया। आपके इस प्रभाव से बौद्धों का हृदय परिवर्तित हो गया। तभी से वे नम्र हो गये थे। भारी मात्रा में जनता ने भी पुनः सनातन धर्म स्वीकार कर जगद्गुरु स्वामी द्वारानन्दाचार्यजीका हृदय प्रफुल्लित कर दिया।

जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी-१४

इनका जन्मस्थान प्रयागराजमें है और इनके पिताश्री सरयूपारीण भृगुगोत्रीय पंडित श्रीमनमोहन तिवारी और माता श्रीमती सरस्वती देवी थी । बहुत दिनोंकी तपश्चर्याके पश्चात् एक पुत्ररत्न देवदत्तकी प्राप्ति हुई थी वही आगे चलकर जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी के नामसे प्रसिद्ध हुये । बचपन से ही इनकी कुशाग्र बुद्धि थी । बालसखाओं के साथ यह श्रीरामचरितका अभिनय किया करते थे जबकि बहुत मितभाषी और संकोची स्वभाव के थे । वे वृहस्पतिजीके अवतार माने जाते हैं, अतः जगद्गुरु श्री द्वारानन्दाचार्यजी महाराजने इनकी दैवीशक्तिको पहिचान लिया था अतः उन्होंने विक्रम सं. ३३३ में इनका यज्ञोपवीतसंस्कार स्वयं ही सम्पन्न कराकर विद्याध्ययन हेतु देवप्रयाग के एक अच्छे विद्वान का अंतेवासी बना दिया था ।

कुछ ही दिनोंमें समस्त शास्त्रोंका अध्ययन पूर्ण करके और आजीवन विरक्ति का संकल्प लेकर इन्होंने चित्रकूटमें श्रीरामतारकमन्त्रका अनुष्ठान पूर्ण किया था । भगवान श्रीरामको प्रसन्न करने वाला श्रीचित्रकूटधाम सद्यः तपःफल प्रदान करने वाला है ही अतः इनकी उपासना से आकर्षित होकर सपरिकर प्रभु ने दर्शन दिया । सं. ३४७ में श्रीद्वारानन्दाचार्यजीने इन्हें पञ्चसंस्कार प्रदान किया था तदुपरान्त ये देवानन्दाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुये ।

अपने आचार्यश्रीके साथ इन्होंने भारतके समस्त तीर्थोंका भ्रमण भी किया । तीर्थयात्रासे देश-काल का अनुभव होता है । देशवासियों में परस्पर आचार-विचारों के आदान-प्रदान होते हैं । इससे भगवानकी व्यापकताका दर्शन होता है । इसीलिए संतोंने जीवनके अंतिम श्वास तक

तीर्थयात्राकी आवश्यकता बतलाई है । संतों और आचार्यों के तीर्थाटनका उद्देश्य होता है - सदाचार, भक्ति, वैराग्य और ज्ञान का प्रचार-प्रसार ।

इस प्रकार समाजमें व्याप्त अनेक कुरीतियों, अंधविश्वास आदि को दूर करते हुये तथा श्रीवैष्णवधर्मका उपदेश करते हुये इन्होंने बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर विचरण किया । कश्मीरके विद्वानोंसे उनका शास्त्रार्थ ऐतिहासिक है । उन्हें पराजितकर स्वामी देवानन्दाचार्यजी महाराज कश्मीरनरेश के पूज्य हुये । राजाने उनका भव्य स्वागत किया । विद्वत्-सभामें इन्हें अपर **बोधायनाचार्य** और **वेदान्त विद्यानिधि** की उपाधि प्राप्त हुई । श्री द्वारानन्दाचार्यजी महाराजने उसी कश्मीरराजसभाकी विद्वन्मंडली के मध्य इन्हें काषायाम्बर और त्रिदण्ड प्रदानकर श्रीसम्प्रदायाचार्यके पदपर अभिषिक्त किया । श्रीअवधमें इनका शताब्दी महोत्सव भी मनाया गया । माघी पूर्णिमा ५२६ को प्रयागराजके त्रिवेणी तट पर इनका साकेतवास हो गया ।

जगद्गुरु श्रीस्वामी श्यामानन्दाचार्यजी-१५
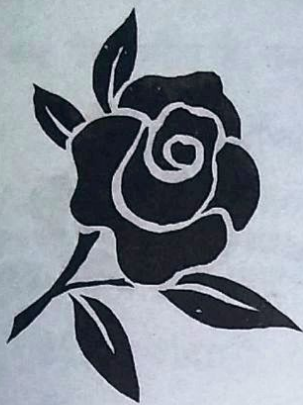
मोक्षदायिनी श्रीजगन्नाथपुरीमें इनका जन्म स्थान है। माताका नाम यशोदादेवी और पिता का नाम वर्धमान निवासी पंडित श्रीदुर्गाचरण मिश्र था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने मातामह पंडित चपलकांत मुखोपाध्याय से हुई थी। काशीमें अध्यापनकार्य करते समय वहाँकी एक विद्वत्सभामें स्वामी देवानन्दाचार्यकी प्रतिभासे प्रभावित होकर इन्होंने विरक्त दीक्षा प्राप्त की थी। तत्पश्चात् श्रीस्वामी श्यामानन्दाचार्यजीने श्री वैष्णवधर्म का प्रचार करते हुये समस्त भारतकी यात्रा पूर्ण की। सैंकड़ो संतों की जमात इनके साथ रहा करती थी। बड़े-बड़े कर्मवादी विद्वानोंको इन्होंने शास्त्रार्थ में पराजित किया था। मथुरा में शांतभद्र से प्रथम शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी। काशीके विद्वत्समाजने भी इन्हें सिद्धान्त भूषणकी उपाधि से सम्मानित किया था। पाटलिपुत्रमें एक प्रभावशाली मीमांसक कृष्णदेव इनसे पराजित हुआ था। इनकी इन सभी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियोंसे प्रसन्न होकर स्वामी देवानन्दाचार्यने इन्हें आचार्यत्व प्रदान किया। श्रीद्वारकापुरीमें श्रीस्वामीजीने श्रीवाराह भगवानकी स्थापना की। बौद्धों से आपका संघर्ष तो जीवन पर्यन्त चलता ही रहा।

जगद्‌गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी-१६

इनका जन्मस्थान कमतौल (अहिल्या स्थान) जि. दरभंगा - बिहार प्रान्त में हैं। इनके पिता श्रीसीताकान्तजी प्रसिद्ध मीमांसक थे। माताश्री का नाम कमलादेवी था। श्रीजनकपुरकी अधिष्ठात्री देवी श्रीसीताशक्तिके वरदान स्वरुप इनका जन्म हुआ था। वही श्रीकान्त मिश्र ही जगद्‌गुरु श्री श्रुतानन्दाचार्यजी के नामसे श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें प्रसिद्ध हुये। उपनयन संस्कार के पश्चात् अपने पिताके वेदविद्यालयमें इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। प्रौढ़ हो जाने पर अपने काका श्रीविष्णुकान्त मिश्र से काशीमें इन्होंने व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। इनका प्रियग्रंथ मीमांसा दर्शन था। इनकी व्युत्पन्न प्रतिभाके समक्ष काशीका समवयस्क कोई भी विद्वान् ठहर नहीं सकता था। प्रतिवादियोंको परास्त करनेके उद्देश्यसे इन्होंने बौद्धग्रन्थोंका भी भली-भांति अध्ययन किया।

वाराणसीके समीप सारनाथ नामक एक प्रसिद्ध बौद्धतीर्थ कहा जाता है। वहाँका एक विख्यात बौद्ध शाक्यमुनि था, उसकी उस क्षेत्रमें बहुत धाक थी। मीमांसाचार्य श्रीकान्तमिश्र (श्रुतानन्दाचार्य)जीने शास्त्रार्थकर उसे पराजित कर दिया। व्याकरण और न्यायशास्त्रसे मिलकर इनका मीमांसाशास्त्र प्रतिवादियोंके लिए और भी तीक्ष्ण हो चुका था, अतः बौद्धों को भारतसे भगानेका ही मानो इन्होंने संकल्प ही कर लिया था। उस समय बिहार के बौद्ध इनसे छिपकर रहने लगे थे। मैथिल पंडित समुदाय भी आपके साथ था।

माता-पिताने विवाह के लिए इनसे बहुत आग्रह किया किन्तु देश और धर्म की रक्षा हेतु इन्होंने विरक्तजीवनमें रहनेका संकल्प पूर्वमें ही ले लिया था । विरक्तसाधुका जीवन बलिदानी होता है । इसमें माता-पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, मित्र और समस्त कौटुम्बिक सुख तथा आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देना होता है, अन्यथा नाम मात्र का वैराग्य रह जाता है ।

उससमय बौद्धोंका साम्राज्य था । राज्याश्रयी होनेके कारण प्रजावर्ग भी राजाज्ञासे अनुबन्धित था । राजसभाओंमें बौद्धभिक्षुकोंका सम्मान होता था, जिस प्रकार श्री राजीव गांधीके प्रधानमंत्रित्वकालमें पोप के सम्मान में करोड़ो रुपयों का व्यय हुआ था ।

वैदिकमर्यादाकी रक्षा ही श्रीवैष्णवधर्माचार्यका प्रमुख धर्म है । इसीसे देशका गौरव सुरक्षित है ।

उस समय कितने देवालयों को बौद्ध-विहारके रूपमें परिणत कर दिया गया था, इतिहास इसका साक्षी है ।

स्वामी श्रुतानन्दाचार्यजी महाराजने विचार किया कि शक्तिमान होते हुये भी जो वेद और वैदिक देवोंका अपमान सुनता और देखता रह जाता है उसकी उस योग्यता को धिक्कार है । अतएव विरक्तजीवनमें रहकर ही इन्होंने श्रीवैष्णवधर्म (वैदिक धर्म) के उद्धारका संकल्प ले लिया ।

इधर जगद्गुरु स्वामी श्यामानन्दाचार्यजी महाराज भी अपने उद्देश्य की पूर्तिकेलिए एक सशक्त और मेधावी उत्तराधिकारी के अन्वेषण में थे । संयोगसे श्रीविश्वामित्र आश्रम (बकसर) में उन दोनोंका मिलन हुआ । परस्परके विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ । तदुपरान्त विजयादशमीके दिन स्वामी श्यामानन्दाचार्यजीने विरक्त दीक्षापूर्वक पञ्चसंस्कार करके भरी सभामें इन्हें जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजीके रूपमें घोषित कर दिया । काशीकी विद्वत्परिषद् में इनका सम्मान हुआ । एक आख्यायिका के अुसार श्री कुमारिल भट्ट भी इनसे प्रभावित हुये थे ।

इस प्रकार स्वामी श्रुतानन्दाचार्यजीके प्रभाव से बिहारमें सैकड़ों श्रीराममन्दिरोंका पुनरुद्धार हुआ था । बौद्धों से संघर्ष में इनका पूरा जीवन लग गया ।

जगद्गुरु श्री चिदानन्दाचार्यजी-१७

इनका पूर्वनाम चतुर्भुज था। ये कान्यकुब्जावतंश थे। इनके पिताका नाम पण्डित सोमभद्र और माताका नाम मालतीदेवी था। श्रीसोमभद्रजी कन्नौजके समीप थानेश्वर से आकर चित्रकूटमें बस गये थे। वहाँके राजा ने उन्हें अनीतिपूर्ण प्राणदण्ड दे दिया था। इस घटना से भयभीत हो बालक चतुर्भुज प्रायः जंगलों में भटकता रहा। वहीं उसे एक श्रीवैष्णव तपस्वीका सत्संग प्राप्त हुआ। उन सन्तने इन्हें समस्त सांसारिकभयका हरण करनेवाली श्रीराम भक्तिका रहस्य बतलाया। प्रारब्धवशात् उस बालक के सुकुमार हृदयमें श्रीरामभक्तिकी रसवन्ती धारा प्रवाहित हो गयी। पश्चात् श्रीसीतारामजीके नित्यविहारस्थल चित्रकूटमें घोर तपस्या की। उसके प्रभाव से वे सर्वशास्त्रार्थों में पारंगत हो गये। श्रीहरिकी प्रेरणासे श्रीस्वामी श्रुतानन्दाचार्यजीने आकर इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। स्वामीजीके दर्शन और सत्संग से इनका हृदय पूर्णरू प से प्रभु में समर्पित हो गया और उन्हीं से विरक्त दीक्षा स्वीकार कर ली।

कहना न होगा कि भारतमें बौद्ध और जैनमत के कारण भारतीय प्रजा निष्क्रिय हो गयी थी। अहिंसक उपदेशके कारण शस्त्र-शिक्षाके कुण्ठित होजानेसे यवनों-मुगलोंका शासन यहाँ पनप सका है। उनके तलवारों की धार पैन थी किन्तु यहाँ अहिंसा की पराकाष्ठा !

भारत में कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी थे जो अभक्ष्य - भक्षी, वामाचारी तथा अशुभ रौद्र वेषधारी थे । उनके कारण श्रीवैष्णवधर्म बारम्बार बाधित होता रहा ।

सनातनधर्मकी रक्षामें दक्षिणात्य आचार्योंका उससमय भारतमें प्रादुर्भाव हुआ था । जैसे - शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि । किन्तु अन्य प्रान्तोंमें हमारे आचार्यों की त्याग, तपस्या और बलिदानके प्रभावसे श्रीरामभक्ति निर्बाधरू प से चलती रही ।

इस प्रकार स्वामी चिदानन्दाचार्यजीने भी बौद्धों, म्लेच्छों, पाशुपतों, लिंगायतों और वामपंथियों आदिसे संघर्ष करते हुये श्रीवैष्णवधर्मको सुरक्षित रखा था । स्वामी श्रुतानन्दाचार्यजीने अपने जीवन के अन्तिमकालमें इन्हें जगद्गुरुके पद पर प्रतिष्ठित किया था ।

इस प्रकार स्वामी चिदानन्दाचार्यजीने बृद्धावस्थामें श्रीचित्रकूटधाममें आश्रम बनाकर वहीं से **श्रीरामभक्ति धर्मचक्र प्रवर्तन** का कार्य किया था और वहीं से तक्षशिला, पाञ्चाल अवध, मगध, इन्द्रप्रस्थ, गुर्जर, बंगाल, उत्कल और मालवा में अपने जमात द्वारा श्रीरामभक्ति का प्रचार प्रसार किया था ।

जगद्‌गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी-१८
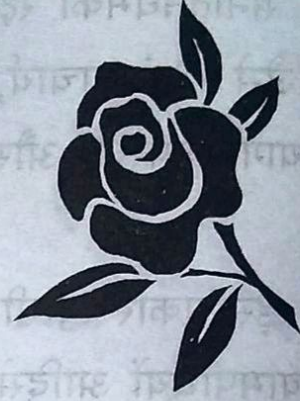
इनका जन्मस्थान अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में है । इनकी माताका नाम नलिनीदेवी और पिताका नाम पण्डित श्रीगोविन्दजी था । इन योग्य दम्पतीको एक योगीपुत्रकी कामना थी । उसके फलस्वरूप श्रीपूर्णेन्दुका जन्म हुआ जो भविष्य में जगद्‌गुरु श्री पूर्णानन्दाचार्यजीके नाम से प्रसिद्ध हुये ।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा ननिहालमें और शास्त्रीय शिक्षा काशीमें सम्पन्न हुई, साथ ही यौगिक सिद्धियाँ भी इन्हें उपलब्ध हुई थीं ।

देशभक्ति और धर्म रक्षाके प्रति इनका भी हृदय बचपन से समर्पित था । विरक्त जीवनमें रहकर ही यह गुरुतर कार्य सम्पादित हो सकता था । भगवान की प्रेरणा से प्रयागराज महाकुम्भ के अवसर पर जगद्‌गुरु स्वामी चिदानन्दाचार्यजी का सत्संग प्राप्त हुआ और वहीं इन्होंने उनसे विरक्त दीक्षा प्राप्त कर ली ।

आचार्यश्रीने इन्हें देशकी परिस्थितिसे अवगत कराया और आशीर्वाद प्रदान किया कि श्रीराममंत्रके प्रभावसे तुम सनातनधर्मकी रक्षा करनेमें अवश्य सफल होगे । बस क्या था ! गुरुकृपा का अमोघास्त्र लेकर वे विधर्मियों को परास्त करनेमें जुट गये । शास्त्रार्थ और यौगिक चमत्कारसे इनकी ओर जनताका आकर्षण बढ़ने लगा । मायावादियों, जैन, बौद्ध, म्लेच्छ और वाममार्गियोंको इन्होंने करारा झटका दिया । शाक्तोंको भी शक्तिहीन बना दिया । लिंगायतोंके भ्रमजालमें पड़ी जनताको श्रीवैष्णवधर्ममें दीक्षित भी किया । दक्षिणभारतके भी केरल, जनार्दनम्, मदुरे, कर्णाटक और आंध्र में भी बड़े श्रम से श्रीरामभक्तिमार्गको पुष्ट किया । गुजरातमें वाममार्गियोंको यौगिक चमत्कार से प्रभावित कर आपने सनातनधर्मकी ध्वजा फहराई । संस्कृतमें लिखे श्रीअनर्घराघव महाकाव्यकी रचना आपकी ही प्रेरणा से हुई थी ।

जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी-१९
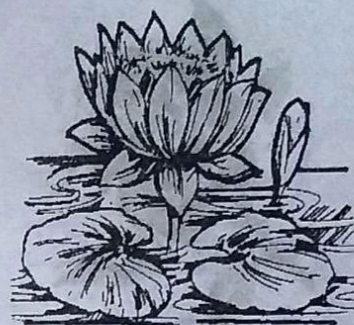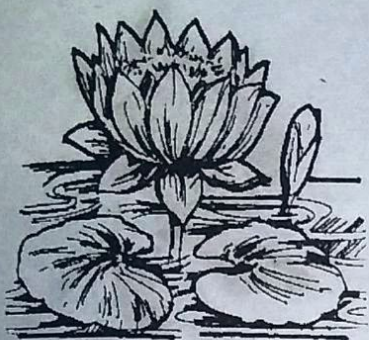
इनका जन्मस्थान नेपाल हैं। इनकी माता श्रीमती गङ्गादेवी और पिताश्री पशुपति उपाध्याय थे। इनका जन्मनाम शिवप्रसाद था जो स्वामी पूर्णानन्दाचार्यजीके वरदानसे जन्मे थे। उपनयन के उपरान्त इन्होंने काशीमें षडङ्गों सहित सभी दर्शनों का अध्ययन किया था। इनकी भी यही इच्छा थी कि किसी योग्य आचार्यकी छत्रछाया में आजीवन सनातनधर्मका प्रचार प्रसार करूँ। बड़भागी माता पिताने भी इनकी इच्छाके अनुरुप सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपने योग्यपुत्रको लाकर आचार्यचरणोंमें समर्पित कर दिया। श्रीस्वामी पूर्णानन्दाचार्यजीका हृदयकमल इन्हें प्राप्तकर खिल गया और इनके माता-पिताको श्रीहरिभक्तिका वरदान प्रदान किया। इससे उनके समस्त सांसारिक बन्धन क्षीण हो गये। पश्चात् पण्डित श्री शिवप्रसाद उपाध्यायजी को विधिवत् पञ्चसंस्कार से युक्त करके उन्होंने समस्त वैष्णवग्रन्थ के रहस्यों का ज्ञान करा दिया। २५ वर्ष की अवस्था में ही ये सम्पूर्ण विद्या में पारंगत हो गये तदुपरांत आचार्यश्रीने इन्हें जगद्गुरु श्रियानन्दाचार्यके रुप में प्रतिष्ठित कर दिया। इस जगद्गुरु पदको चरितार्थ करने के लिए ये दिग्विजयहेतु भारतभ्रमणका संकल्प लेकर आश्रम से चल दिये।

सर्वप्रथम इन्होंने अद्वैतमतको बौद्धदर्शनके अनुकूल सिद्ध करके उनसे कई बार शास्त्रार्थ भी किया। मध्यमपरिणामवादीको पराजितकर उसके सहित पाँच सौ लोगोंको श्रीवैष्णव बनाया। कश्मीरनरेश राजा अनन्तदेवके यहाँ पधारकर श्रीबोधायनवृत्तिकी प्रतिलिपि देखकर उसे सत्यापित किया। उसी यात्रा के समय पण्डितोंकी सभामें इन्हें **सिद्धान्त विजयी** की उपाधि प्राप्त हुई। प्रसिद्ध विद्वान् क्षेमेन्द्रको इन्होंने शिष्य भी बनाया। इस प्रकार देशकी चारों दिशाओंमें भ्रमण कर इन्होंने सनातनधर्मकी ध्वजा को फहराया। तत्पश्चात् काशीमें आकर अपने पूर्वाचार्यकी तपोभूमि श्री पञ्चगङ्गाघाटका पुनरुद्धार कर उसे श्रीसम्प्रदायकी आचार्यपीठ श्रीमठके नामसे घोषित किया। भारत के सभी श्रीवैष्णवोंने इसे मान्यता प्रदान की।

जगद्गुरु श्रीहर्यानन्दाचार्यजी-२०

इनका जन्म श्रीअवधके समीप सम्भवतः कर्णपुर जिला रायबरेली में है । इनके पिताका नाम पण्डित श्रीरामकुमार अवस्थी और माताका नाम सरस्वती देवी है । स्वामी हर्यानन्दाचार्यजी का पूर्वनाम हरिप्रसाद अवस्थी है । इन्होंने भी ब्रह्मचर्यव्रतपूर्वक काशीमें समस्त शास्त्रोंका अध्ययन किया था । स्वामी श्रियानन्दजीके प्रभावके कारण छात्रावस्थासे ही इनके रोम-रोममें श्रीरामभक्ति भर गयी थी अतः प्रयत्न करके माता-पिता से आज्ञा लेकर अपने विरक्त जीवनकी अनुमति प्राप्त कर ली थी । फलस्वरुप श्री स्वामीजीने इनके माता-पिता के समक्ष ही इन्हें विरक्त श्रीवैष्णवीदीक्षा प्रदान की । इसी के साथ वे माता-पिता भी आत्मबन्धनसे मुक्त हो गये ।

पश्चात् गुरुदेवकी अनुमति प्राप्तकर श्रीराम और राष्ट्रभक्तिका सन्देश जन-जन में प्रचारित करने के उद्देश्यसे इन्होंने भी गुरुआश्रमका त्याग किया था । स्वामी हर्यानन्दाचार्यजी महाराज शान्तस्वभावके थे, अतः शास्त्रार्थ द्वारा किसी को पराजित करना इन्होंने बहुत उपयुक्त नहीं समझा । ये केवल अपने श्रीसम्प्रदायके सिद्धान्तका प्रचार किये । बृद्धावस्थामें श्रीमठ काशीमें ही निवास करते हुये अन्ततक श्री वैष्णवधर्मका संचालन किया ।

जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी-२१
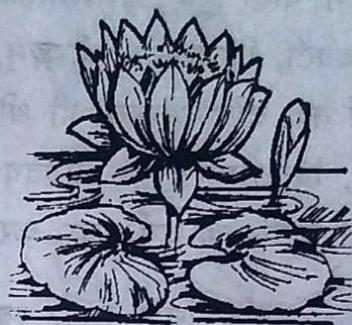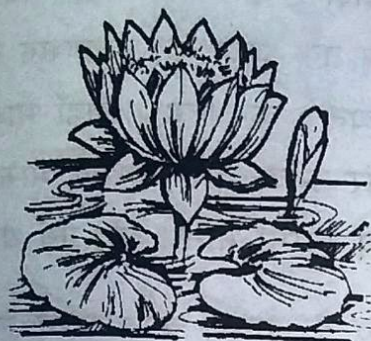
स्वामी राघवानन्दाचार्यका जन्मस्थल श्रीवशिष्ठकुण्ड अयोध्याजीमें है । इनके पिता सरयूपारीण श्रीशाण्डिल्यगोत्रीय पण्डितराज श्रीअवधेशप्रसाद त्रिपाठी और माता श्रीमती अम्बिका देवी थीं । श्रीस्वामीजी जन्मसे ही उदार और भगवन्निष्ठ थे । श्रीअवधमें जन्मके प्रभावसे इनमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके लक्षण स्पष्ट थे । एक बार श्रीस्वामी हर्यानन्दाचार्यजी महाराज श्रीअवध पधारे थे, वहीं इस अबोधबालकके मुखमण्डल पर विलक्षण प्रकाशको अपने योगबलसे समझकर इनकी माता से श्रीरामजी के प्रसाद रुप में इनकी याचना कर दी थी ।

श्रीतिवारीजी भी जगद्गुरु स्वामीजीकी इस याचनाको भंग करनेका साहस नहीं कर सके थे ।

श्री स्वामी हर्यानन्दाचार्यजी ने अपने श्रीमठमें लाकर इन्हें स्वयं वेदान्तके निगूढ रहस्योंका अध्ययन कराया और श्रीवैष्णवदीक्षा प्रदान की । वही बालक राघवप्रसाद त्रिपाठी आज जगद्गुरु श्री राघवानन्दाचार्यजी के नाम से जाने जाते हैं । पूर्वोक्त गुण और स्वभाव के कारण काशीके पण्डितोंने इनके सद्धर्म प्रचारमें पूर्ण सहयोग देनेका आश्वासन दिया ।

श्रीस्वामी हर्यानन्दाचार्यजी महाराजने अशक्त होनेके कारण इन्हें उस श्रीमठका इक्कीसवां आचार्य घोषित करते हुये जगद्गुरुके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ।

पूर्वाचार्योंके पदचिह्नों को ध्यानमें रखकर और आचार्यानुशासन प्राप्तकर स्वामी

राघवानन्दाचार्यजी भी देशधर्मकी सुरक्षाकेलिए निरावरण चरणारविन्द की अवस्थामें मठसे निकल पड़े । प्रयागराज, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंका भ्रमण करते हुये और विधर्मियोंको परास्त करते हुये सिद्धपुर (गुजरात), वीरमगाम, भृगुक्षेत्र, बांकानेर, डाकोर, सुदामापुरी, द्वारकापुरी आदि स्थलों का भ्रमण करते हुये श्रीरामभक्तिका प्रचार किये । इसके आगे वे दक्षिण की ओर बढ़ते गये । पञ्चवटी, किष्किन्धा, श्रीरङ्गम्, बालाजी आदि होते हुये श्री रामेश्वम् तक यात्रा की । लगभग २० वर्षों तक दक्षिणभारतमें ही श्रीवैष्णवधर्मका प्रचार करते हुये समय व्यतीत कर दिया । वहाँ माधव भट्ट, विट्ठलपन्त और जयदेव मिश्र उनके ही शिष्य थे । इस प्रकार उनके द्वारा दक्षिण भारतमें बहुत दिनों तक धर्म प्रचार करते रहने के कारण लोग उन्हें दाक्षिणात्य स्वामी मानने लग गये थे ।

उनके प्रधान शिष्य स्वामी रामानन्दाचार्यजीके अधिक प्रभाव के कारण कालान्तरमें लोग श्रीराघवानन्दजीको स्वामी रामानन्दाचार्यका शिष्य भी कहने लग गये थे । कतिपय लोग रामानुजीय और भी क्या-क्या कहने लग गये थे जो वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टिसे अमान्य है ।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-२२

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥१॥
मन्त्रराजमहाराज - साम्राज्यैक-धुरन्धरम् ।
रामानन्दयतीन्द्रस्य त्रिदण्डं सादर नुमः ॥२॥

भगवान् श्रीरामजी चराचर निखिल ब्रह्माण्ड के विधाता हैं । श्रीरामनाम और श्रीराममन्त्र, उत्तमसे उत्तम ब्राह्मणादि और नीचसे नीच कीटपतंगादि समस्त प्राणियोंका तारक है । काम, क्रोध आदि महाशत्रुओंके बीचमें, विपत्तिके अगाध सागरमें, अज्ञानके दुर्दमनीय - आवर्तमें और समस्त असहाय अवस्थाओं में यही श्रीरामनाम परमबन्धुके समान सहायक होता है । अतएव जगद्गुरुने गांगरौनगढ़में उपदेश करते हुए कहा था कि-

यस्मिन्महापत्तिसरित्पतौ च, ब्रुडन्तमालोक्य जहत्यनन्ते ।
मित्राण्यपि त्राणमिदं करोति श्रीरामनामात इदं भजद्ध्वम् ॥
आभीलमाभाल्य तवाल्पमेव, त्वनल्पकल्पान्तदवाग्नि दग्धः ।
त्वत्प्रीतये यत्नमयन्नयंस्ते, निरस्तसाम्यो विपदेकबन्धुः ॥

(श्रीरामानन्द दिग्विजय, सर्ग १२, श्लोक ६२-६३)

"जिस विपत्तिरूपसागरमें डूबते हुए देखकर मित्र भी छोड़ देते हैं वहाँ भी श्रीरामनाम रक्षा करता है अतः इसे ही भजो । तुम्हारे अत्यन्त अल्प-दुःखको भी देखकर अनल्प महान् कल्पान्तमें वनाग्नि से जलेहुये के समान दुःखित होकर तुम्हारे सुखके लिये यत्न करते हुए वह आपत्ति-बन्धु

किसीकी समता नहीं रखते" । यही समस्त वेदों, शास्त्रों और पुराणोंका हृदय है । यही सर्व ऋषियों और मुनियोंका समस्त रहस्य है और यही पूर्वाचार्योंका अमर उपदेश है । श्रियों की भी श्री जगदम्बा जानकीजीने आत्माओं पर परमकृपालु होकर, उनके कल्याणकेलिये जो सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था उसका विश्वविदित नाम श्रीसम्प्रदाय है । इस श्रीसम्प्रदायमें सृष्टिके आरम्भ से श्रीराममन्त्रका ही परमाप्त आचार्यचरणोंद्वारा उपदेश होता चला आ रहा है । महारानीजीने अपने परमप्रिय शिष्य मारुति को जिस षडक्षर मन्त्रराजका उपदेश किया था वह, चिरंजीवी ब्रह्माजी जैसे महर्षिके द्वारा सत्ययुगमें सुरक्षित रहा । त्रेतामें श्रीवशिष्ठजीने उसका प्रचार और संरक्षण किया । द्वापरमें पराशर, व्यास और शुकदेवजीने उसका संरक्षण और संवर्धन किया* । कलियुगमें श्रीस्वामी पुरुषोत्तमाचार्यसे लेकर श्रीस्वामी राघवानन्दाचार्य-पर्यन्त पूर्वाचार्योंने इस मन्त्रराजाश्रित श्रीसम्प्रदायकी रक्षामें अपनी समस्त शक्तिका व्यय कर दिया ।

ईसाकी १३ वीं शताब्दीमें स्वामी श्रीराघवानन्दाचार्यजी महाराज काशीमें इस चिन्तामें मग्न थे कि अब कलियुग वेगके साथ अपनी युवावस्थाकी ओर बढता जा रहा है । हिन्दू शासनका भारतसे प्रायः अन्त होने लग गया था । यवनसाम्राज्य बद्धमूल होता जा रहा है ।

हमारे अनेक शिष्योंमेंसे ऐसा एक भी प्रतीत नहीं होता कि जो इस विकट समयमें सम्प्रदायकी सर्वांगीण रक्षा कर सके । पूर्वाचार्योंद्वारा प्रवर्तित और सुरक्षित सम्प्रदाय कालकी गतिसे आज मेरे आचार्यत्वके कालमें दोलारुढ़ स्थितिको प्राप्त हो चुका है । इसकी रक्षाका भार अपनी इस बृद्धास्थामें मैं किसे सौंपूँ ।

जिस समय आचार्य श्रीराघवानन्द स्वामीजी इस चिन्तामें निमज्जन और उन्मज्जन कर रहे

---

* जानकी तु जगन्माता हनुमन्तं गुणाकरम् ।
श्रावयामास नूनं स ब्रह्माणं सुधियां वरम् ।
तस्मांल्लेभे वसिष्ठर्षिः क्रमादस्मादवातरत् ॥
(वाल्मीकि सं. अ० ५, श्लोक ३४, ३५)

इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् ।
अहं हनूमते मम प्रियाय प्रियतराय ।
स वेदवादिने ब्रह्मणे । स वसिष्ठाय ।
स पराशराय । स व्यासाय । स शुकाय ।
इत्येषोपनिषत् । इत्येषा ब्रह्मविद्या ॥ –(मैथिलीमहोपनिषत्)

थे उसी समय तीर्थराज-प्रयागमें पण्डितवर्य श्रीपुण्यसदन शर्माके गृहमें, माता सुशीलाकी भाग्यशाली गोदीमें शैशवावस्थाके मस्तकपर पदारोपण करके बालक रामानन्द विद्यारम्भकी योग्यता की अवस्थामें पहुँच चुके थे । रामानन्दके पिता छः वर्षकी अवस्थामें उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराकर काशीमें श्रीराघवानन्दाचार्यके आश्रममें प्रविष्ट कराकर घर लौट आये ।

ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दने श्रीराघवानन्दाचार्यजीके पास साङ्गोपाङ्ग समत शास्त्रोंका अध्ययन समाप्त करके, अपनी बुद्धिकी प्रतिभाके द्वारा संसारभरके विद्वानोंमें एक कुतूहलसा उत्पन्न कर दिया । ब्रह्मचारी रामानन्दकी तेजस्विनी विद्या, अप्रतिम प्रतिभा, अविश्रान्त शान्ति और सूर्यप्रभ मुखमण्डलके अनन्त तेजने सर्वत्र चाकचिक्य उत्पन्न कर दिया । संसारके समग्र विद्वानोंने समयपर इनके सम्मेलन से अपना मत निश्चय कर दिया कि आज भारतवर्षमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इनके सामने अपना प्रभुत्व प्रकट कर सके । शास्त्रीयप्रसंगमें ब्रह्मचारी श्रीरामानन्दके विकसित बुद्धि-वैभवको देखकर आचार्य श्रीराघवानन्दजीका हृदय भर गया । उनके हृदय को कुछ आश्वासन मिला । आशा बँध गयी कि अवश्य हमारा धर्म सुरक्षित रह सकेगा ! ब्रह्मचारी रामानन्दने विद्याकी समाप्तिके पश्चात् अपने पूज्य माता-पिताकी सहर्ष आज्ञा लेकर वैष्णवसंन्यासी होनेका निश्चय किया । आचार्य श्रीराघवानन्द अपने इस सुयोग्य शिष्यको संन्यासी बनाकर थोड़े ही समयमें आचार्यपदका समस्त भार उन्हें अर्पित कर स्वयं साकेतवासी हुए ।

स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने भारतवर्षके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक श्रीसम्प्रदाय-वैष्णवधर्मके नियमों और तत्त्वोंका संदेश पहुँचानेका सफल प्रयास किया । उन्होंने अपने आचार्यत्वकालमें भारतवर्षके हृदयपटलपर अपनी विजयिनी शक्तिकी प्रभुत्वस्थापना करनेंमें जो सफलता प्राप्त की थी उसकी तुलना आज संसारमें नहीं है । श्रीस्वामीजीको अपने कार्यक्रमकी पूर्तिकेलिये शारीरिक बलका प्रयोग नहीं करना पड़ा था, रक्तपातकी भी आवश्यकता नहीं हुई थी, राजशक्ति भी अपेक्षित नहीं थी । उन्होंने केवल अपने विद्याबल, योगबल और सबसे महत्त्वपूर्ण आत्मबलके द्वारा ही जगतपर विजय प्राप्त किया था । इन्हीं शक्तियोंसे संसारके सभी सम्प्रदायके विद्वानोंपर उन्होंने अपना गौरवस्थापन किया था और इन्हींके द्वारा वह वस्तुतः जगद्गुरु बन सके थे ।

जो दीनोंपर दया करे वही दीनबंधु है । शरणागतकी रक्षा करे वही स्वामी है । जो संसारकी उन्नति और प्रजा के उद्बोधनकेलिये सक्रिय चेष्टा करे वही महान् पुरुष है । जो संसारके कल्याणके मार्गका उपदेष्टा हो वही सच्चा जगद्गुरु है । स्वामीजीमें यह सब बातें समासीन

थीं । उन्होंने कबीरदास, रविदास और सेन जैसोंपर अपनी अमृतमयी दृष्टि डालकर उन्हें सच्चा प्रभुभक्त और संसारका पथप्रदर्शक बनाकर, अपनी उदारता और वैष्णवधर्मकी गम्भीरता का परिचय जिससमय संसारके सामने प्रथम-प्रथम रक्खा था उससमय संसार चकित था और भारत गौरवपूर्ण अनिमिषनयनसे अपने इस लाडले सुपुत्र की ओर निहार रहा था । जिस समय संसारके एक ओर से यह तूती बज रही थी कि स्त्रियोंको दीक्षा प्राप्त करनेका अधिकार नहीं है, पतिसेवाके अतिरिक्त देवसेवा और गुरुसेवा उनके लिये अविहित है, उस समय श्रीस्वामीजीने पद्मावतीजीको दीक्षित करके संसारको बता दिया कि प्रभुकी भक्ति और प्रभु की शरणागति प्राणिमात्रके लिये विहित और प्राप्य वस्तु है । जिस प्रकार पुरुष प्रभुकी भक्ति और कृपाका अधिकारी है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी प्रभुकी कृपा और अनुपम भक्तिके पात्र हैं । स्वामीजीने पद्मावती स्त्रीको तथा रविदास प्रभृति ब्राह्मणेतरों को वैष्णवी दीक्षासे दीक्षित करके भगवन्मार्गके अद्वितीय पथिक बनाकर जो सर्वश्रेष्ठ कार्य किया है उसे देखकर यदि हम यह कहें कि–

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

गीताके इस श्लोकके भाष्यरूप ही पद्मावती और रविदास आदि थे, तो इसमें कुछ भी अनौचित्य और अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती । आचार्यचरणोंने अपने इस सुवर्णकृत्यसे संसारकी उन्नतिका मार्ग विशद, निष्कंटक और उदार बनाकर जो जगत्-कल्याण किया है वह अनिर्वचनीय है । यवनोंकी दैनन्दिन भारतमें अभिबृद्धि होते देखकर स्वामीजी इस सिद्धान्त पर पहुँचते हुए प्रतीत होते हैं कि "ब्रह्मचर्य, शारीरिक बल, अनन्यभक्ति और त्यागके बिना भारतकी रक्षा, धर्मकी रक्षा तथा भारतीय ललनाओंके सतीत्व की रक्षा नितान्त असंभव है । इसीलिये उन्होंने एक विरक्तदलका संघटन किया जिसे आज **वैरागी** शब्दसे संबोधित किया जाता है । आचार्यने अपने शिष्योंको संसारसे निःस्पृह बनाकर समरविजेता बनानेका सर्वथा स्तुत्य प्रयास किया था । बौद्धभिक्षुओंके पश्चात् भारतका इतिहास इस विषयमें चुप-सा दीख पड़ता है कि वैदिकधर्मावलम्बियोंने अपना व्यापक कोई विरक्तदल स्थापित किया हो । परन्तु ईसाकी १४वीं शताब्दीका आरम्भ इस बात का साक्षी है कि यतिराज श्रीरामानन्दाचार्यने धर्मकेलिये प्राणतक अर्पण करने में कभी भी न संकोच करनेवाले विरक्तसमाज की स्थापना की थी, जो आज भी कालकी गतिके अनुसार कुछ परिवर्तित होकर उसी ध्येयपर मरमिटनेकेलिये अचलरूप से जीवित है । संसारमें जबतक इस विरागिदलका एक भी मनुष्य जीता रहेगा, तबतक भारतीय राजनीतिके

गगनमण्डलमें एक परमपवित्र संन्यासीका हृदय सूर्य और चन्द्रके समान प्रकाशमान और शीतल दृष्टिगोचर होता रहेगा । जब तक यह **वैरागी** नाम पृथ्वीके इतिहासमें सम्मिलित रहेगा, तबतक यतिराज़की सहृदयता, दूरदर्शिता और देशहितैषिताके उज्जवल भावोंका परिचय संसारके भावी महापुरुषोंकी दृष्टिसे ओझल न हो सकेगा ।

स्वामीजीकेलिये कहा जाता है कि वह जातिबन्धन अथवा वर्णाश्रमके विरोधी थे । मेरा दृढ मत है कि ऐसा माननेवाले अत्यन्त भ्रान्त हैं । उन्होंने कभी भी, जातिबन्धन तोड़ना तो पृथक् रहा, उसे शिथिल बनानेका विचार भी नहीं किया । हाँ उनमें जो विशेषता थी वह केवल यह कि स्वयं ब्राह्मणोत्तम होते हुए भी अब्राह्मणों के प्रति उनका द्वेष नहीं था । घृणा नहीं थी । वह ब्राह्मण और शूद्र सभीको प्रभुकी अनन्त लीलाओंके पात्र समझते थे । सभी को **श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः** इस श्रुतिके अनुसार भगवान्के पुत्र समझते थे । वह यह समझते थे कि जैसे पिता को ज्येष्ठपुत्र प्रिय होता है वैसे ही कनिष्ठ भी प्रिय होता है । भगवानको जैसे ब्राह्मण प्रिय है वैसे ही ब्राह्मणेतर भी प्रिय है । इसी भावको सम्मुख रखकर उन्होंने कबीर और रविदासको शिष्य बनाया था ।

यदि वह वर्णधर्म और आश्रमधर्मके विरोधी होते तो वेदान्तसूत्रके अपशुद्राधिकरण में शूद्रोंको वेदाधिकारका निषेध न करते तथा त्रिदण्डसंन्यास न ग्रहण करते । अतः वह जातिबन्धनके विरोधी थे इस बात को प्रमाणित करनेकेलिये उनके जीवनके एक पलका भी कोई कार्यसाधन नहीं है । वह चाहते थे कि सब वर्णके लोग स्वस्ववर्गोचित कार्योंको करते हुए - दृढ़तापूर्वक सम्पादन करते हुए - भी परस्पर प्रेमभाव और ऐक्यके साथ रह सकें । वह समझते थे कि पारस्परिक ऐक्यके बिना भारतका रक्षण और धर्मका पोषण असम्भव है । यह बहुत सम्भव है कि इस संघटनकी आवश्यकताके विषयमें उनकी अनन्य दृढ़ता देखकर ही लोगोंने भ्रमसे यह सिद्धान्त बना लिया हो कि वह जातिबन्धन अथवा वर्णाश्रम के विरोधी थे अथवा वर्तमान समयके सुधारकों की श्रेणी में से थे ।

स्वामीजी महाराजने अपने विरक्त शिष्योंको इस वर्णके अभिमानसे बहुत पृथक् रक्खा था यह निःसन्दिग्धरूप से प्रकट हो जाता है । यदि ऐसा न होता तो उनके द्वादश प्रधानशिष्य भिन्न-भिन्न वर्णके होते हुए भी परस्पर प्रेमपूर्वक नहीं रह सकते ! यदि स्वस्ववर्गोंका अभिमान सबके हृदयमें जागृत होता तो अवश्य ही स्वामीजीके पश्चात् वह ज्वालामुखी पर्वत फूटता कि जिससे रामानन्दसम्प्रदायका आज अस्तित्व भी नहीं रह जाता । परन्तु भक्तिमार्गके परमाचार्यने तो उन्हें यह खूब दिखाया था कि–

जातिर्विद्या महत्वं च रूपं यौवनमेव च ।

यत्नेन परितस्त्याज्याः पञ्चैते भक्तिकण्टकाः ।

वर्णधर्मके विषयमें श्रीस्वामीजीकी उस समय जो उदारता रही होगी उसका अनुभव आजके श्रीरामानन्दसम्प्रदायके विरक्त समाजकी स्थितिसे अनायास किया जा सकता है । आजके भी श्रीरामानन्दीय विरक्तसमाजमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंका समावेश है । वेषभूषामें सबकी समानता है । दण्डवत्-प्रणामादिमें भी "मानिय सबहिं राम के नाते के अनुसार अभिन्नता है" । परन्तु भोजनव्यवहारमें, प्रभुकी सेवापूजाके सम्बन्धमें असमानता है । यही व्यवहार इस विषयमें साक्षी है कि आचार्यचरण वर्णधर्मके विरोधी नहीं थे, प्रत्युत् वर्गाभिमानके विरोधी थे । अपनेको बड़ा मानकर छोटेका तिरस्कार करना पाप है यही उनका मुख्य उद्देश्य रहा है ।

भविष्यपुराणकी एक कथाके आधारपर कहनेवाले यह भी कहते हैं कि श्रीस्वामीजीने अयोध्याजीमें दशसहस्र म्लेच्छोंकी शुद्धि की थी अतः वह शुद्धि के परमगुरु थे । इस विषयमें मुझे जो कुछ कहना था वह **श्रीरामानन्द दिग्विजय** में मैं कह चुका हूँ । यहाँ पर संक्षिप्त रूपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि जो लोग भविष्यपुराणकी उस कथाके आधार पर शुद्धिको सत्य मानते हों उन्हें वहाँके सब संयोग भी सत्य ही मानने पड़ेंगे । उन्होंने उन लोगोंकी शुद्धि की थी जो लोग मुसलमान बादशाहके द्वारा मार्गोंपर लगाये हुए यन्त्रके द्वारसे जाते हुए बलात्कारसे यवन हो जाते थे । जिन्होंने स्वेच्छासे कभी भी यवनधर्मको स्वीकार नहीं किया था, ऐसों को श्रीस्वामीजीके शिष्योंने भी विलोम यन्त्रके द्वारा पुनः परावर्तन किया था और उन्हींको श्रीस्वामीजीने स्वयम् काशी से आकर उनकी जातिमें सम्मिलित कराया था । यदि इन चमत्कारोंपर, मन्त्रोंके सामर्थ्य पर विश्वास हो तो श्रीस्वामीजीके नाम पर इतना ही किया जा सकता है कि आज भी वैसे ही यन्त्रद्वारा बनाये गये मुसलमानोंको **विलोम** यन्त्र द्वारा शुद्ध कर लिया जावे । परन्तु जिन्हें चमत्कारों पर तो विश्वास नहीं है और शुद्धशब्द पुराणमें देखकर कठपुतली के समान नाच पड़ते हैं, उन्हें अर्धजरतीयन्याय का अवलम्बन करके हास्यास्पद न बनाना चाहिये । युगधर्म बलवान है । जिसको जो रुचिकर हो वह भले अपने उत्तरदायित्व पर करता कराता रहे, परन्तु एक धर्माचार्यका अनुचितरूपसे आश्रयण करना गर्हित ही है । स्वामीजी श्रीसम्प्रदायके परमाचार्य थे अतः भक्तियोगके ही प्रधानप्रचारक थे । यों तो नवधाभक्तिमेंसे किसी भी भक्तिका अवलम्बन करके मनुष्य संसार-सागर से तर सकता है, परन्तु श्रीस्वामीजीने विशेषकर दास्यभावको ही अंगीकार किया है । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि श्रवणवन्दन आदि पर उनका विशेष आग्रह नहीं है । वह तो स्पष्ट अपने ग्रन्थ वैष्णवमताब्जभास्करमें लिखते हैं कि :-

मनोमिलिन्दस्तव पादपंकजे, रमार्चिते संरमतां भवे भवे ।
यशःश्रुतौ ते मम कर्णयुग्मकं, त्वद्भक्तसंगोऽस्तु सदा मम प्रभो ॥

अतः दास्यभावपर भार देनेका आशय यह है कि पादसेवन और अर्चन ये दोनों तो सर्वसुलभ नहीं हैं । इन दोके अतिरिक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन और आत्मनिवेदन ये पाँच सर्वसुलभ हैं, परन्तु ये सातों ही स्वयं प्रधान नहीं हैं किन्तु दास्यभाव के अंग हैं । दास्यभाव और सख्यभाव ये दोनो अंगी हैं । इन सात अंगोंमेंसे उपर्युक्त पांच ही निर्विशेष तथा सर्वजनप्राप्य हैं और दो अप्राप्य हैं । इन प्राप्य और अप्राप्य अंगों सहित दास्यभावको ही स्वामीजीने अधिक महत्त्व दिया था । अतएव छः निरोधोंमेंसे भी स्वामीजी महाराजको केवल स्वामिभाव निरोध ही प्रियतम है । श्रीयतिराजके जीवनपर विवेचना करनेवाले कितने ही विवेचकोंने बड़े बड़े भ्रमोत्पादक तथा भ्रान्तविचार प्रकट किये हैं । कितने ही कहते हैं कि स्वामीजी वैष्णवाचार्य तो थे परन्तु उनपर शिवोपासकों का बहुत बड़ा प्रभाव था । वह अपनी उक्तिमें प्रमाण यह देते हैं कि “आज उनके सहस्रों अनुयायी जटा और विभूतिधारण करते हैं तथा गांजा, भांग आदि सेवन करते हैं और यह सब कार्य शिवोपासकोंके विशेष चिन्ह हैं और **न धारयेज्जटाभारं भस्मं चापि न लेपयेत्** इस वैष्णवधर्मके आदेशके विरुद्ध है । इन भाइयों को इतना विचार कर लेना चाहिये कि एक ही औषधि अनुपानभेदसे अनेक धर्मोंका ग्रहण करता है । एक ही पुरुष धर्मभेदसे अनेक धर्मोंका बन जाता है । वैसे ही एक ही जटा और भस्म भावनाभेद् से भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करते हैं । शैवोंकी जटा और भस्म तथा वैष्णवों की जटा और भस्म यद्यपि दोनों अपने-अपने रूप से समान हैं परन्तु दोनोंमें भावनाका आकाश और पाताल जितना अन्तराल है । शैवोंकी भावना यह है कि हमारे इष्टदेव शंकरका यह रूप है । उसके बिना हम अधोगति को प्राप्त करेंगे, इत्यादि । इसके विपरीत वैष्णवमहात्माओं की भावना यह है कि हम जगत्के समस्त वैभवोंको भस्मके समान तुच्छ समझते हैं । हमने समस्त इन्द्रियोंके विषयोंको उस प्रकारसे बाँध लिया है जैसे हमने अपने सिरपर जटा बाँधी है । हमारी जटा और हमारा भस्म केवल हमारी निःस्पृहता और हमारे शुद्ध सचादारके ज्ञापक हैं । हमारी जटा और भस्मका यह भी तात्पर्य है कि हमारे प्राणप्रियनाथने श्रीअवधकी राजगद्दी से पृथक् होकर जटाधारण किया था । वह बल्कलपरिधान करते थे तथा धूलिनिचयपूर्ण पृथ्वीपर शयन करते थे । यह जटा और भस्म हमारे प्रभुके वही बाना है । जंगलमें भगवान कण्टकोंमें चला करते थे यह विचारकर कितने ही महात्मा कुशशय्यापर शयन करते हैं । एक

मनुष्य विषको प्राणत्यागकी इच्छा से भक्षण करता है और एक औषधि के रूपमें सेवन करता है। विषभक्षण समान होने पर भी जैसे फलमें महान् अन्तर है उसी प्रकार जटा और भस्म का धार करना समान होनेपर भी भावना भेदसे शैव साधुओं और विरक्तवैष्णव महात्माओंसे महान अन्तर है। अतः हमारे उन विवेचक भ्राताओंका अनुमान सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

कितनोंका यह भी मत है कि स्वामीजी श्रीरामानुजसम्प्रदायके संन्यासी थे। यद्यपि श्रीरामानुजसम्प्रदाय भी श्रीसम्प्रदायमें परिगणित है तथापि उस सम्प्रदायमें नारायणमंत्र और नारायण भगवान्‌की विशेषरूपसे उपासना होनेकेकारण, तथा आभ्यन्तरिक आचार और व्यवहारमें भी अनेक भेद होनेकेकारण श्रीरामानुजाचार्य द्वारा संवर्धित श्रीसम्प्रदायमें और श्रीरामानन्दाचार्य द्वारा संवर्धित श्रीसम्प्रदायमें अवश्य अन्तर है और यह ऐसा अन्तर है कि जिसका कभी निराकरण नहीं हो सकता। मन्त्र और इष्टदेव ये ही तो दो विशेष वस्तु हैं। जो किसीभी सम्प्रदायके श्वासोच्छवासके स्वामी माने जाते हैं। जिन दो सम्प्रदायोंका मन्त्र और देव एक नहीं है तथा जिनका भोजनव्यवहार एक नहीं है उनकी एकताका बेसुरा राग अलापना व्यर्थ है। इस विषयमें केवल इतना ही सत्य है कि वेदान्तसिद्धान्त और अन्य कतिपय रहस्य जिन ग्रन्थोंके आधारपर श्रीरामानुजसम्प्रदाय के पूर्वाचार्योंने जिस प्रकारसे संकलित किये हैं उन्हीं ग्रन्थोंके आधार पर उसी प्रकारसे श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के पूर्वाचार्योंने भी उन्हें संकलित किये हैं। इन्हीं समानताओंको लेकर कोलाहल करनेवाले कोलाहल करते फिरते हैं कि श्रीरामानुजसम्प्रदाय और श्रीरामानन्दसम्प्रदाय दोनों एक ही है। वस्तुतः आंशिक समानताओंके रहते हुए भी मंत्र और इष्टदेवकी विभिन्नतासे मुख्यांशमें पार्थ्यक्य हो गया है। इतने पार्थक्यको वर्तमान समयके प्रायः सभी धर्माचार्य और विद्वान् एक स्वर से स्वीकार कर रहे हैं।

संक्षेप में मैंने श्री सम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दस्वामीजी महाराजके पवित्र जीवनपर दृष्टिपात किया है। जिन्हें विशेष जानना हो उन्हें मेरा लिखा हुआ सटीक श्रीरामानन्ददिग्विजय और उसकी बृहद् भूमिकाका अवलोकन करना चाहिये।

-अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजीमहाराज

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामीभगवदाचार्यजी-२३
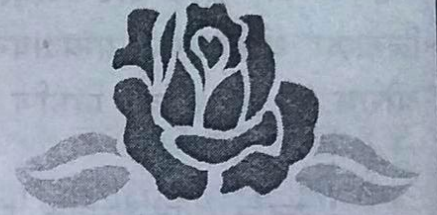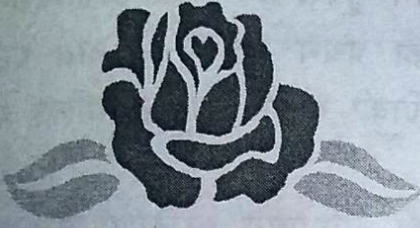
भगवदाचार्यं वन्दे वेदवेदान्तपारगम् ।
रामानन्दीयचित्तेषु राममन्त्रार्थभासकम् ॥

यतीन्द्रचक्रचूडामणि जगद्गुरुरामानन्दाचार्य श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराजने श्रीरामानन्दसम्प्रदायको समुन्नत करनेमें भगीरथ प्रयास किया है, यह सर्वविदित है । वह बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे । जीवनका सम्पूर्ण समय उन्होंने सरस्वती-आराधनमें ही लगा दिया । वेदों, उपनिषदों, सूत्र-स्मृतिप्रस्थान ग्रन्थों, पुराणों और श्रीरामायण आदि ग्रन्थोंमें भी तर्क-वितर्क द्वारा एक निखार उत्पन्न किया । किसी भी युक्तिको तर्कशास्त्र की कसौटीपर कसना उनके जीवनका परिचय रहा ।

अयोध्याजीके एक विशिष्ट विद्वान् श्रीरुद्रप्रसाद अवस्थी 'भट्टजीने' श्रीराजगोपाल संस्कृत महाविद्यालयमें कहा था - **अहं स्वामिभगवदाचार्यं सम्यग् वेद्मि, असौ यत्किञ्चिद् वदति तत्प्रतिपादयितुमपि समर्थः ।**

त्रिवेणीजीकी धारामें सरस्वती अदृश्य हैं किन्तु स्वामी भगवदाचार्यजीकी वाणीरुपी त्रिवेणीमें सरस्वती सबसे ऊपर मुखर होती थीं । वह ब्रह्मविद्या कभी शास्त्रार्थपर उतरकर, कभी लेखनीपर उतरकर और कभी ज्ञान और उपासनापर उतरकर अश्रुधाराके रूपमें प्रवाहित होती थी ।

ब्रह्माकी सृष्टि नियतिकृत नियमसहिता है ओर कविकी सृष्टि नियतिकृत नियम रहिता है, उसी प्रकार श्रीस्वामीजीकी सृष्टि स्वच्छन्द हैं । इसीलिये तत्कालीन झाड़-झंखाड़ को उन्होंने

बेदर्दीके साथ काटकर साफ कर दिया। जितने लोग स्वयम्भू बनते थे उन लोगोंको बता दिया कि तुम कृत्रिम हो। श्रीरामानन्दसम्प्रदायको उन्होंने राजमार्गके रूपमें प्रशस्त किया तथा इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक और राष्ट्रीयपक्षको दृढ़ता के साथ गतिमान किया।

पराशरनन्दन श्रीव्यासने सूत्रशैलीमें जिस ब्रह्मसूत्र ग्रन्थका निर्माणकर अमिट इतिहासकी स्थापना की, उसके बाद स्वामी भगवदाचार्यजी ही ऐसे हुये जिन्होंने सूत्रशैलीमें **विशिष्टाद्वैतदर्शन** लिखकर श्रीरामानन्द सम्प्रदायमें चार चाँद लगा दिया। जिसका प्रथम सूत्र है - **अथ परः श्रीरामः**। इस सूत्रका निर्माण करके स्वामीजी मानो भगवती श्रुतिकी गोदमें लालित-पालित हो रहे हैं।

उन्होंने श्रुति-शास्त्रके जिस पक्षको उत्थापित किया उसका सांगोपांग निरुपण अन्ततक अवश्य पहुँचाया है।

वेदभाष्य तो अनेक विद्वानोंने किया, अद्यावधि भी जिसका अध्ययन-अध्यापन हो रहा है किन्तु श्रीभगवदाचार्य स्वामीके संस्कारभाष्य मानव-जीवनसे जुड़े हैं क्योंकि मानव जब भी आकुल-व्याकुल होता है तो उसके नेत्र भगवानकी ओर ही उठते हैं। स्वरसंधान और उच्चारण की ओर उनकी दृष्टि बिल्कुल नहीं होती है। जीवनके प्रत्येक पक्षमें वे अपने आराध्यका दर्शन करना चाहते हैं। स्वामीजीने वेदमन्त्रोंमें परमकृपालु अपने उपास्यदेवके दर्शन करानेका प्रयास किया है। यह उनकी निजी मानसिकता और हृदयोद्गार रहा जो समय - समय पर प्रस्फुरित हुआ है।

कुछ लोगोंको उनकी लेखनीसे क्षोभ, असन्तोष और नास्तिकता आदि का आभास हो जाता है वह स्वामीजीका पूर्वपक्ष रहा है। उसमें भी उनकी उपासना झलकती है।

वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें जब चतुर्विंशति अक्षर गायत्री का दर्शन बहुत लोग नहीं कर पाये। मंगलाचरणका भी दर्शन नहीं कर पाये तो स्वामीजीने उसका सांगोपांग अभिधान करके समाजके समक्ष प्रस्तुत कर दिया। उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा अद्वितीय रही।

ब्रह्मसूत्रोंपर अनेक आचार्योंने भाष्य किया है, किन्तु स्वामी भगवदाचार्यजीने डिमडिमघोषके साथ वैदिक भाष्यकर सम्पूर्ण विश्वको चकित कर दिया, इससे उनके प्रखर वैदुष्यका परिचय प्राप्त होता है।

राष्ट्रवाद तो उनकी दोधूयमान ध्वजा रही। भारतपारिजातम् जैसे महाकाव्य गांधीजीपर लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि त्याग, बलिदान, दया, करुणा, प्रेम और सेवा के बिना संसार में एकता, सरलता, सुबोधता और स्पष्टताकी नींव नहीं रखी जा सकती। पारिजातका अर्थ होता है - अभीष्टफलप्रदायक। गांधीजीने अपने जीवनमें वह प्राप्तकर लिया जो उन्हें अभीष्ट था।

भगवान् श्रीरामने जिस प्रकार सेवा और प्रेमसे जनमानसको जीता था, उसी प्रकार गांधीजीने भी दीनहीनोंकी सेवा और प्रेमके द्वारा समग्र विश्वका हृदय जीता था, इसमें अतिशयोक्ति नहीं है । यह स्वामीजी द्वारा अप्रस्तुत प्रशंसा नहीं की गयी है ।

संतोके व्यसन-धूम्रपानके प्रबल विरोधी होते हुये भी स्वामीजीने विभूतिधारणकी प्रशंसा की है । उसमें अपने उपास्यका दर्शन किया है ।

वह अनुग्रह करते हैं कि हमारे आराध्य भगवान् श्रीरामने वल्कल पहिनकर वट क्षीरसे जटा संवारकर उदासी (तपस्वी) वेषमें जब वनवासी जीवन व्यतीत किया तो वहाँ हरिजन, गिरिजन, पशु, पक्षी आदि जड़-चेतन सभी को प्यार दिया, उसी की संस्मृतिमें हमारे सन्तजन मौञ्जीय आदिको धारण करते हैं ।

स्वामीजीने सम्प्रदायके लिये अपने गुरुस्थानका भी त्याग किया था । उन्हें सम्प्रदायाचार्य-पदपर अभिषिक्त करके श्रीरामानन्दीय महापुरुषोंने उनके प्रति कृतज्ञता समर्पित की थी ।

लगभग ७०० वर्षोंके पश्चात् श्रीरामानन्द सम्प्रदायको इन अपरामानन्दाचार्यकी प्राप्ति हुई थी ।

इस प्रकार श्रीस्वामी भगवदाचार्यजी महाराज कार्यतः जगद्गुरु रामानन्दाचार्य थे ।

स्वामीजीके ग्रन्थ

यजुःसंस्कारभाष्यम्, सामसंस्कारभाष्यम्, दशोपनिषद् भाष्यम्, ब्रह्मसूत्र रामानन्दभाष्य, ब्रह्मसूत्र वैदिकभाष्यम्, त्रिरत्नी, श्रीसम्प्रदाय रक्षा, परम्परापरित्राण, प्रस्तुतप्रसंगभंग, तत्त्वोद्बोधनमीमांसा, आश्रमकण्टकोद्धार । और भूतकी झिझक, किला टूट गया, भटियारिनलीला, भूतका मन्त्र, मैथिलीकी मिथिला, हाय वैदिक सर्वस्व, जगद्गुरुश्री रामानन्दाचार्य आदि शताधिक प्रत्याख्यानात्मक लेख और तत्त्वदर्शी नामक पत्रिकाका प्रकाशन ।

दिव्य दर्शन, मातृस्तवः, श्रीलोकोत्तराम्बाचरणाश्रयम्, भक्त कल्पद्रुमः, भक्तसर्वस्वम्,

चतुष्पदी, प्रेमपीयूष प्रवाह, प्रपन्नकल्पद्रुमः, पुरुषोत्तम प्रणयः, श्रीभगवत्स्तवः श्रीमारुतिस्तवः, श्रीयतिराजस्तवराजः, श्रीयतिराजमंगलम्, सप्तस्तवी, श्रीमद्यतीन्द्र विंशातिः, स्तुति कुसुमाञ्जलिः आदि स्तोत्र ग्रन्थ ।

सन्मार्गदीपिका, श्रीमन्त्रराजभाष्यम्, श्रीभगवत्पूजन पद्धति, श्रीरामयज्ञ पद्धति, तत्त्वार्थ पञ्चकम्, श्रीवैष्णवमताब्जभास्करका संशोधन एवं टीका, श्रीरामपटलका संशोधन और टीका । भारत पारिजातम्, पारिजात सौरभम्, श्रीरामानन्ददिग्विजय आदि ५ महाकाव्य । विशिष्टाद्वैत दर्शन । वेद, सुषमा, वेदमाहात्म्य, यम यमी सम्बाद आदि सैकड़ों निबन्ध । स्वामी भगवदाचार्य (आत्मकथा) ७ भागों में, लेखरत्नमाला, आदि । इसके साथ ही अनेक चुनौतीपूर्ण शास्त्रार्थोंमें सदा विजयी ।

उनकी स्मृतिमें **"स्वामी भगवदाचार्य स्मारकसदन अयोध्या"** का स्वसम्प्रदाय द्वारा निर्माण, **रामानन्दकोट** - अहमदाबाद का पुनरुद्धार तथा कर्मवीर स्वामी रामकुमारदासजी (खाकीबापू) द्वारा भव्य एवं साधु सेवा, समाजसेवाका प्रतीक **स्वामी भगवदाचार्य**-आश्रम अहमदाबाद और भगवद्धाम विरार (महाराष्ट्र) में ।

पूज्य खाकी बापु स्वामी भगवदाचार्यजी महाराज के मानस शिष्यों में से एक हैं । उनके उत्तराधिकारी सम्प्रदाचार्यों- श्रीस्वामी शिवरामाचार्यजी और वर्तमान आचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी तक में वैसी ही अनन्य निष्ठा रखते हुये आज भी स्वामी भगवदाचार्यजीके स्वप्नोंको साकर कर रहे हैं ।

जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी शिवरामाचार्यजी-२४

सारस्वत सार्वभौम स्वामी भगवदाचार्यजी महाराजने अपने जीवनकालमें ही षड्दर्शनाचार्य श्रीस्वामी शिवरामाचार्यजीको घोषित कर दिया था। किन्तु उनके पश्चात् उन्हींके बनाये हुये सम्बिधान- **आचार्य निर्वाचन समिति** द्वारा श्रीरामानन्दकोट-अहमदाबादमें इनका सम्प्रदायाचार्य पदपर अभिषेक हुआ था।

स्वामी शिवरामाचार्यजी का जन्म ग्राम परमपुर, जिला बहराइच उत्तरप्रदेश में है। इनके पिता सरयूपारीण ब्राह्मण श्रीनारायण मिश्र और माता श्रीमती जानकीदेवी थीं।

इनकी अबोध अवस्थामें इनके पिताजी के स्वर्गवासी हो जाने के बाद ये अनाथ हो गये थे किन्तु प्रारब्ध की बलवत्ता से ये बड़ी छावनी के एक सन्त के साथ श्री अयोध्याजी आ गये। कुछ कालके उपरान्त श्रीहनुमानगढ़ी अयोध्यामें बाबाश्रीअमरदासजी से दीक्षित होकर स्थानीय श्रीहनुमानगढ़ी संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत विद्याका अध्ययन करने लगे। उच्च शिक्षण हेतु काशी में जाकर वहीं पर षड्दर्शनाचार्य की उपाधि प्राप्त की और वहीं एक विद्यालय में अध्यापन करने लगे। षड्दर्शन केशरी श्रीपोष्टाचार्यने अपने समान उन्हें विद्वान बनाया था अतः काशीके विद्वत्समाजमें वे भी षड्दर्शनाचार्यके नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। अचतुर्मुखब्रह्मकल्प स्वामी भगवदाचार्यजी और श्रीअयोध्यास्थ दार्शनिक सार्वभौमसे भी आपको प्रेरणा मिली थी। सन् १९७८ ई. में जगद्‌गुरु पद पर अभिषिक्त होने के पूर्व वे कई वर्षों तक कर्वी कालेज (चित्रकूट) के प्रधानाचार्य थे।

लगभग ११ वर्षोंतक जगद्‌गुरु रामानन्दाचार्य पदपर सार्वभौमप्रतिष्ठा उन्हें प्राप्त हुई थी।

इसके उपरान्त भी वे निरभिमानी, शान्तप्रिय और सरल थे। **अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा** के प्रतिमान थे। श्रीराम जन्मभूमिन्यास उन्हींकी अध्यक्षता में गठित होकर पूर्ण ख्यात हो गया था। उन्होंने कभी अपने निन्दक को प्रत्युत्तर नहीं दिया, यह सन्त जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। उनकी शालीनता और गम्भीरता समाज में चिरस्मरणीय रहेगी।

-पण्डित पवनकुमार दास

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज-२५
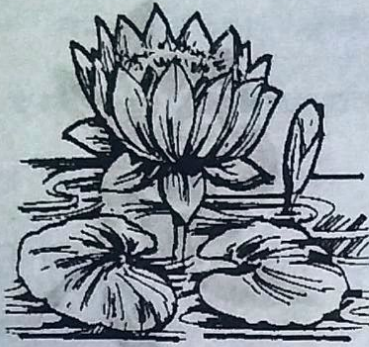
२६ जनवरी १९८९ को तीर्थराज प्रयागमें भेष द्वारा श्रीसम्प्रदायाचार्य पद पर अभिषिक्त होनेके उपरान्त हमारे २५वें आचार्यश्रीने सर्वप्रथम अपने पूर्वाचार्य श्रीमत्स्वामी भगवदाचार्यजीके साहित्यको गतिमान किया। बाल्यकालसे ही श्रीअवधकी माटीमें रचे-पचे श्रीस्वामीजीने **श्रीसम्प्रदाय मन्थन** ग्रन्थके माध्यमसे अपने समस्त पूर्वाचार्यों सहित श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के वैदिक सिद्धान्त, इतिहास और परम्पराको समष्टिरूपसे ग्रथित कर मालाके रूपमें समाजको प्रदान किया। और भी, वर्षमें एक ग्रन्थ अवश्य तय्यार करनेके संकल्पको चरितार्थ कर रहे हैं। जनमानस प्रभु श्रीराम और श्रीरामानन्दाचार्यजी के परम उदार चरित्रोंसे सदैव लाभान्वित हो, इस उद्देश्यसे अभी श्रीरामनवमी महोत्सव के उपलक्ष्यमें **श्री अवध सौरभ** मासिक पत्रिकाका श्रीगणेश किया है।

इस प्रकार पूज्य आचार्यश्रीने **जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीहरिधामपीठ** (अयोध्या) में **स्वामी हर्याचार्य प्रकाशन** को समृद्ध और अक्षुण्ण बनाने की योजना की है।

जिस देश व सम्प्रदायका परम्परागत साहित्य नहीं होता, इतिहासके बिना समाजमें वह मृततुल्य माना गया है। अतः हमारे आचार्यश्री की यही मान्यता है– **इष्टेष्वनुरागोऽनिष्टानां परिहारश्चैवमाचार्याणां प्रथमः कार्यः।**

इष्टदेवमें अनुराग और अनिष्टोंका वारण करना आचार्यका प्रथम कर्तव्य होता है।

"पढ़ना लिखना बाभन काम। भजते साधू सीताराम" का तात्पर्य यह नहीं है कि विरक्त (साधु) को निरक्षर भट्टाचार्य होना चाहिये। भोज-भण्डारा और दानमानकार्य तो धनिक-वणिक् का होता है। सन्त तो अकिञ्चन होता है और यही उसकी शोभा है।

देखो ! आज ईसाई मिशनरियां कितनी तत्परता से भारतीय मानसिकताको परिवर्तित कर रही हैं । विश्वभरमें उसकी संस्कृति हावी हो गयी है । इधर देखिये तो अहम्मन्यता के कारण हम अपने ही समाज में कटते-बँटते और छँटते जा रहे हैं । मैंने ऐसा अनुभव किया है कि जनसामान्य हिन्दुधर्मोद्धारक जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यजी महाराजके व्यक्तित्व और कृतित्वसे अभी भी अपरिचित है । इसका कारण है, उनके प्रचार-प्रसार का अभाव ।

उच्चकोटिके प्रवक्ता होने से हमारे आचार्यश्री जन सामान्य के मध्य जाते हैं, अतः सम्प्रदायाचार्य के कर्तव्य को वे भलीभाँति समझते हैं ।

कर्मवीर स्वामी रामकुमारदासजी महाराज आचार्यश्री की प्रतिभा-कामधेनु के भाववत्स हैं । मेरा ऐसा विश्वास है कि इन महापुरुषद्वयके सहयोगसे जगत् को अविच्छिन्नरूपसे श्रीरामरामानन्दचरितका प्रकाश प्राप्त होता रहेगा ।

स्वामी हर्याचार्य प्रकाशन से प्रकाशित ग्रन्थों की सूची

१.	श्रीसम्प्रदाय समयः	-	हरितोषिणीटीका (हिन्दी अनुवाद)
२.	श्रीसम्प्रदाय मन्थन	-	सात अध्यायों में (हिन्दी)
३.	श्री गीताभक्ति दर्शन-१२वाँ अ०	-	श्रीहरिभाष्य (हिन्दी)
४.	ईशावास्योपनिषद्	-	श्रीहरिभाष्य (हिन्दी)
५.	ब्रह्मसूत्र - प्रथमपाद	-	श्रीहरिभाष्यम् (भक्तिभूषणभाष्य हिन्दी सहित)
६.	श्रीहनुमत्कवच	-	श्रीहरिभाष्य (हिन्दी)
७.	श्रीरामस्तवराज	-	श्रीभक्तिभूषण भाष्य (हिन्दी)
८.	नारी तू नारायणी !	-	निबन्ध ग्रन्थ (हिन्दी)
९.	वेदों में अवतार रहस्य	-	निबन्ध ग्रन्थ (हिन्दी)
१०.	मानस का वैदिकत्व	-	निबन्ध ग्रन्थ (हिन्दी)
११.	श्रीमद्भागवत प्रवचन	-	अप्रकाशित
१२.	वाल्मीकि एवं तुलसी के भरत	-	अप्रकाशित
१३.	अवध सौरभ (मासिक पत्रिका)	-	प्रकाशित

-रामदेवदास

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त-विमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी हर्याचार्यजी महाराज)

चिदचिद्भ्यां विशिष्टाय शिष्टपक्ष-सुरक्षिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय राघवेन्द्राय मङ्गलम् ॥

सम्पूर्ण श्रुतियाँ, स्मृतियाँ एवं जितने भी ब्रह्मप्रतिपादक ग्रन्थ हैं, वे विविध नाम, रूपभेदसे सर्वशेषी, सर्वान्तर्यामी परम कारुणिक प्रभु श्रीरामजीका ही प्रतिपादन करते हैं । जैसाकि प्रस्थानत्रयानन्द भाष्यकार भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य ब्रह्मसूत्रके **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** में प्रतिपादित करते हैं ।

यथाः–ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीय निरस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासंख्येय-कल्याणगुणगणं भगवन्तं श्रीराममेवाह ।

अर्थात् ब्रह्मपद वाच्य, महापुरुष, पुरुषोत्तम निखिलहेय प्रत्यनीक, लोकमङ्गलस्वरूप परमतत्त्व श्रीराम ही हैं । वेदान्त ग्रन्थोंमें लक्षण और प्रमाण वचनों द्वारा इसी तत्त्वका व्याख्यान किया गया है । **जन्माद्यस्य यतः** (ब्र०सू०२) वचन **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म इति"** । इस पंक्तिसे सिद्ध होता है । यहाँ यतः पद साकांक्ष है क्योंकि यथा पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते यहां देवदत्त का पीनत्व कार्य दिवसमें भोजन न करनेसे सम्भव नहीं है, अतः रात्रिमें भोजन अवश्य गम्यमान है ।

अतः उक्त पंक्तिमें यह स्पष्ट है कि जिससे विविध नाम-रूपात्मक जगत्की सृष्टि होती है तथा जिसके द्वारा वह पालित पोषित है एवं जिसकी कुक्षिमें इसका अवसान भी होता है, उसी की जिज्ञासा करनी चाहिये, वह जिज्ञास्यमान तत्त्व ब्रह्म है । इसी अर्थमें महर्षि वाल्मीकि आदिके वचन भी सिद्ध होते हैं । यथा-

सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥ (वा० रा० ५/५१/३८)

अर्थात् महायशस्वी श्रीराम सम्पूर्ण चराचर सहित सृष्टिका संहार कर पुनः उनकी संरचना व व्यवस्था करनेमें पूर्ण समर्थ हैं ।

जेहि महं आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥

तथा- न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। (श्वेत० उ० ६/८)

अर्थात् श्रीरामजी अपनेमें परिपूर्ण हैं। न उनका कोई कार्य है, न उनका कोई कारण (सहायक) है। न उनके समान और न अधिक कोई वस्तु या तत्त्व है। अनन्तर ब्रह्मकी प्रमाण-प्रतिपादक श्रुतियाँ भी सर्वावतारी श्रीरामका ही प्रतिपादन करती हैं। यथा-

शास्त्रयोनित्वात् (ब्रह्मसूत्र १/१/३)

१. अर्थात् ब्रह्मके प्रतिपादनमें शास्त्र ही प्रमाण हैं। २- शास्त्र० - वेदकीयोनि - कारण होने से परब्रह्मकी सर्वज्ञता है।

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः - सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यातानि। (बृ० ५/११)

अर्थात् परमात्माके ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, रामायण, महाभारत, इतिहास, विष्णुपुराणादि विद्या, उपनिषद्, पाञ्चरात्रादि ग्रन्थ निःश्वासभूत अनुव्याख्यान हैं। श्रीसम्प्रदायाचार्य ज० गु० स्वामी पूर्णानन्दजीने भी इसी वचनकी पुष्टि की है। यथा-

ब्रह्मसत्वे प्रमाणञ्च शास्त्रमेव सुनिश्चितम्।
तन्त्वौपनिषदञ्चैतत् श्रुतिवाक्य प्रमाणतः॥ (बोधायन मतादर्श)

अर्थात् ब्रह्मकी स्थितिमें शास्त्र ही का प्रमाण सुनिश्चित है, यही श्रुतिवाक्य प्रमाण है।

तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृ० उपनिषद्)
नैषा तर्केण मतिरापनेया (कठ० उपनिषद् १/२/६)

इस वचनसे निर्विवाद ब्रह्मसत्ता सिद्ध है।

ब्रह्मका जगत् के प्रति कार्यकारण एकता-

ब्रह्म चित्त्-अचित् विशिष्ट है। चित्त्का अर्थ जीव है। गीतामें जीव अर्थात् आत्माको नित्य, निर्विकार, सर्वगत, अचल एवं सनातन तथा स्थाणु कहा गया है। यह अजन्मा एवं त्रिकालमें भी हर्ष, भय, शोकादि विकारोंसे रहित है–

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। (गी० २/१४)

इसी प्रकार अचित् - अर्थात् माया भी दो प्रकारकी है - विद्या, अविद्या। ये दोनों अनादि हैं, अर्थात् आदि अन्त रहित, परन्तु परमात्माके पराधीन हैं। अचित्का दूसरा अर्थ है भोगरूप जगत् तथा ब्रह्मका अर्थ है परमात्मा, परमेश्वर और श्रीराम आदि। यथा–**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च**

मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत् । (श्वे० १/१२) जो सृष्टिको बढ़ावे, वह ब्रह्म है । **बृंहति बृंहयति च तद् ब्रह्म अथवा बृंहणत्वाद्धा पालनकर्तृत्वाद्धा तद् ब्रह्म** । अर्थात् परम कृपालु श्रीराम ब्रह्म अपने साथ ही स्वकीयजनोंको बढ़ाते अथवा पालन करते हैं । **जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्** । अर्थात् हे राम ! यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारा शरीर है और आप जगत्के शरीरी हैं । वह विभु एवं चेतन है तथा अपने शरीरमें धर्मभूत ज्ञान और विग्रहसे विविध रूप हो रहे हैं । विविधभवन ही विभुत्व है । वही प्रभु सर्वकर्म समाराध्य है । सर्वकर्मका अर्थ सर्व सत्कर्म है । ज्ञान एवं कर्मानुष्ठानसे अन्तःकरण पवित्र होता है । उससे पराभक्तिका उदय होता है; उसी भक्ति रूप ज्ञान द्वारा जीव संसारसे मुक्त होकर भगवान्के नित्य कैंकर्यकी प्राप्ति करता है । अतः भगवत्-प्रपत्तिसे ही जीवका मायासे संतरण होता है । यथा-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ (गीता ७/१४)

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि चित् जीवात्मा एवं अचित् प्रकृत्यादि से विशिष्ट ब्रह्म की सत्ता है । यहां अचित्का तात्पर्य अविद्या माया से है । विद्या का तात्पर्य अमृतत्व प्राप्ति से है तथा दोनों ही पुरुषोत्तम ब्रह्मकी संकल्पशक्ति है । उक्त श्लोकमें जिस मायासे संतरणकी बात कही गयी है उसका तात्पर्य अविद्या ही है । विद्या माया तो भगवद् विमुख जीवोंको प्रभुके सम्मुख उपस्थित करती है, वही भगवत्कृपाशक्ति है । यथा-

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्यं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ (ईशावास्य उ०)

वह अविद्या कार्यरूपमें ब्रह्मकी अध्यक्षतामें जीवकृत पूर्व कर्मानुसार भोग्य एवं भोगरूप उपकरण आदि रूपसे चराचर जगत्की सृष्टि करती है । अविद्यासे दुःख-निवृत्ति और विद्यासे भगवत्तत्वकी प्राप्ति होती है । यथा-

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । (गी० ९/१०)

अर्थात् "अध्यक्षेण - मयेक्षिता भूता, प्रकृतिः = मदीया प्रकृतिः प्राक्तनजीवकर्माण्यनुसृत्य तत्तज्जीव भोग्यभोगोपकरणादिरूपेण सचराचरजगत् सूयते" । जगत् सृष्टिकर्तृत्व ब्रह्मकी एक लीला है । जैसे राजा आदि कन्दुक आदिकी क्रीडाविशेष करते हैं, वह मात्र लीला अर्थात् खेल है । इसी प्रकार आप्तकाम, निष्काम ब्रह्मकी भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार लीला कैवल्य ही है । ब्रह्मसूत्रमें **लोकवत्तुलीलाकैवल्यम्** इस वचनके आनन्दभाष्यमें उक्त वचन प्रतिपादित है । **यथा**

राजादेलोंके कन्दुकादिक्रीडा विशेषाः केवलं ब्रह्मणो जगत्-सृष्ट्यादयो व्यापाराः लीला कैवल्यमेव वह माया भी ब्रह्म के संकल्पानुसार विविध नामरूपात्मक भेदसे परिणत हो जाती है ।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानाः सरूपाः । कारणावस्थित ब्रह्म लीलाकी प्रतिष्ठापना करनेकेलिए भक्तानुग्रहवशात् पति-पत्नी रूपमें परिणत हो जाता है ।

स एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत् । तस्मात् पतिश्च पत्नी चाभवताम् । श्रीरामचरितमानसमें महाराज मनु-शतरूपाको युगल-छविका दर्शन एक साथ हुआ ।

इस प्रकार सूक्ष्मचित् एवं अचित् कारणावस्थ विशिष्ट ब्रह्म एवं स्थूलचित् एवं अचित् कार्यावस्थविशिष्टब्रह्म दोनोंकी एकता है । इसीको शरीर-शरीरी भेदसे **अपृथक् सिद्धि सम्बन्ध** कहते हैं । इस सम्बन्धका तात्पर्य यह है कि जो कभी भी किसी दशा में टूट न सके । ब्रह्म विशेष्य एवं चित् और अचित् ब्रह्मके विशेषण हैं । अभेदप्रतिपादक एवं भेदप्रतिपादक दोनों श्रुतियोंका कथन चिद्-अचिद् विशिष्ट ब्रह्मका प्रतिपादन है । इसी प्रकार विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तमें भेद तथा अभेद प्रतिपादक श्रुतियोंका समन्वय हो जाता है । अतः इस श्रीबोधायनाभिमत सिद्धान्तको जगद्गुरु श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीने स्वकीय भाष्यमें स्वीकृत किया है । यथा-

एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहास-पुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिबलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य विषयो न तु केवलाद्वैतम् ।

इस प्रकार अखिल श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादियोगसे विशिष्टाद्वैत ब्रह्म ही मीमांसाशास्त्रका विषय है, केवलाद्वैत नहीं । उक्त विषयमें पूर्वाचार्य जगद्गुरु स्वामी श्री श्रियानन्दाचार्यका कथन है–

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तो बोधायनानुमोदितः ।
वैदिको वैदिकैर्मान्यः साधितः श्रुतियुक्तिभिः ॥ (श्रौत प्रमेय चन्द्रिका)

वैदिक विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त श्रीबोधायनाचार्य द्वारा अनुमोदित तथा श्रुतियुक्तियोंसे प्रतिपादित एवं वैदिकों द्वारा मान्य है ।

विशिष्टाद्वैत व्याख्या-

विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे-ब्रह्मणी । विशिष्टयोः-ब्रह्मणो अद्वैतम् अभेदः-विशिष्टाद्वैतम् । विशिष्टं च, विशिष्टं च, यहां दो बार विशिष्ट पद आया है । प्रथम विशिष्टपद सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्टब्रह्मपरक है तथा द्वितीय विशिष्ट पद स्थूलचिदचिद्विशिष्टब्रह्मपरक है । यही

विशिष्टाद्वैतका अर्थ है । वट बीजन्याय से वह नित्य ही कार्यकारण भावसे एकरूपमें विद्यमान रहता है ।

एक शब्दका व्यवहार जैसे-यह और यह एक ही धान है । तथैव मुक्त दशामें सभी जीव सम ही होते हैं । ब्रह्मको जानकर ब्रह्म ही हो जाता है, वहाँ ब्रह्मैव में एव शब्द का अर्थ इव है । निघण्टु एवं न्यायसिद्धाञ्जनमें यह स्पष्ट रूपमें प्रतिपादित किया गया है । देवो भूत्वा देवं यजेत एवं विष्णुरेव भूत्वा का अर्थ देव एवं विष्णुसदृश ही है । जीव परमेश्वरसे भिन्न है । नित्य, मुक्त, बद्ध आदि जीवोंके भेद इसीसे सिद्ध होते हैं । जीव भले ही संसारी हो या असंसारी, वह भगवान्का शेष, अधीन और रक्ष्य ही होता है । जब तक कर्मवश गमनागमन होता है तबतक उसका संसारित्व है । भगवत्कृपासे कर्मबन्धन कट जाने एवं भक्ति, प्रपत्ति सिद्ध हो जाने पर संसारित्व नहीं रहता ।

तुलसिदास यह जीव मोह रजु जोइ बांध्यो सोई छौरे । (वि० प० १०२)

श्रीसम्प्रदायमें ब्रह्मका पञ्चविध स्वरूप-एकत्व विशिष्ट ब्रह्मके पाँच प्रकारके धर्मोंका आश्रय होनेके कारण श्रीवैष्णवाचार्योंने उसे पञ्चविध कहा है । यथा-पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार । सम्पूर्ण सूक्ष्म, स्थूल निखिल प्रपञ्च तथा ब्रह्मा, विष्णु महेशादिके परम कारण परब्रह्म श्रीरामजी हैं । वन्देऽहं तमेशषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।

जगद्धेतुः परब्रह्म श्रीरामः सकलेश्वरः ।
दिव्यदेहगुणः पूर्णः पञ्चधाऽवस्थितो मतः ॥
मम प्रकाराः पञ्चैते प्राहुर्वेदान्तपारगाः ।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम् ॥ (श्रौत प्रमेय चन्द्रिका)

अर्थात् दिव्यदेह और दिव्यगुणोंसे पूर्ण तथा जगत् के कारण सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराम पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतार इन पाँच रूपोंसे स्थित हैं । पाञ्चरात्रागममें भगवान्की यही उक्ति है । पालनपूरणार्थक पृ धातु है । पालक एवं पूर्ण होनेके कारण श्रीरामजी पर हैं । अतः वे ही सकल जीवोंके रमणस्थान हैं । वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूहमें रमण करते हैं । अथवा सभीको रमण करानेमें श्रेष्ठ हैं । रामो रमयतां वरः, रमते रमयति च इति रामः ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥ (रा० ता० उ०)

जिस सच्चिदानन्द स्वरूपमें योगिजन रमण करते हैं, वही श्रीरामपदसे परब्रह्म कहे जाते हैं ।

विधिहिं विधिता हरिहिं हरिता शिवहिं शिवता जो दई।

सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई। (वि० प० १३४/३)

२. **व्यूह**-व्यूहके चार भेद हैं-पहला वासुदेव, दूसरा प्रद्युम्न, तीसरा अनिरुद्ध, चौथा संकर्षण। उनमें वासुदेव षड्गुण - ज्ञान, बल, वीर्य, ऐश्वर्य, तेज और शक्तिसे परिपूर्ण हैं तथा वे श्रीरामजी ही प्रद्युम्नरूपसे विश्वकर्ता–हिरण्यगर्भ महाब्रह्मा हैं एवं अनिरुद्ध रूपसे पालकरूप महाविष्णु हैं। संकर्षण - महाशम्भु रूपसे चराचर जगत् का संहार करते हैं।

भगवान् पराशरजी पराशरीय धर्मशास्त्रके उत्तरखण्डमें अनुग्रह करते हैं कि परब्रह्म श्रीराम-

जगत्सृष्टि स्थितिं लयान्कुर्वाणो गुणभेदतः।
ऐश्वर्य वीर्यवान् सर्वे प्रद्युम्नः प्रत्यपद्यत॥
तेजःशक्ती समाविश्य ह्यनिरुद्धोऽप्यपालयत्।
ज्ञानवान् बलवाँल्लोकानग्रसत्संकर्षणोऽव्ययः॥ (पराशर० अ० ६, श्लो० ६६, ७०)

अपने षड् ऐश्वर्यमें से ऐश्वर्य एवं वीर्यप्रधान प्रद्युम्नरूपसे विश्वकर्ता हैं तथा तेजःशक्ति प्रधान अनिरुद्ध रूपसे विश्वपालक हैं। ज्ञान और बलप्रधान संकर्षण रूपसे विश्वसंहारक हैं।

वासुदेवादिमूर्त्तीनां चतुर्णां कारणं परम्।
चतुर्विंशति मूर्तीनामाश्रयः शरणं मम॥ (श्रौतप्रमेय चन्द्रिका)

इस प्रकार चतुर्व्यूह-वासुदेवादि चार मूर्तियोंके परमकारण एवं चतर्विंशति अवतारोंके आश्रय प्रभु श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं।

३. **विभव**-तीसरा रूप विभवावतार है जो श्रुति-स्मृति आदि सच्छास्त्रोंमें प्रतिपादित है। यह अवतार मत्स्य, वाराह, नरसिंह आदि भेदों से १० प्रकार का है जो कर्माधीन नहीं है, अपितु स्वेच्छया है। विविध रूपमें अवतरित होनेपर भी श्रीरामका परब्रह्मत्व किञ्चित् भी न्यून नहीं होता है, क्योंकि वे सदा सर्वगुणों से परिपूर्ण रहते हैं। यथा-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पुर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ (ईशावास्योपनिषद्)

मुख्य और गौण आदि भेदसे विभव अनेक प्रकार का है। उपास्य और अनुपास्य भेदसे भी विभव दो प्रकार के हैं। ये अवतार प्रदीपसे अन्य दीपके समान ही हैं। इन अवतारों में वेदवचन ही प्रमाण हैं-

पूर्वो यो देवेभ्यो जातः (यजु० अ० ३१मं० २०)

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वाः ॥-यजुः अ० ३१म०१९

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ

गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः ॥ (यजु० अ० ३२ मं० ३)

वराहेण पृथिवीं संविदाना सूकराय (यजु० अ० ३२ मं० ४)

विजहीते मृगाय (अथर्व वेद १२ अनु० १ मं० ४८)

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना (तै० अ० प्र० १ अनु० मं० १)

वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः (शतपथ ब्रा० १४/१/२/११)

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् (यजु० अ० ५ मं० १५)

तथा-परित्राणाय साधूनां.....धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

(गी० अ० ४ श्लोक ८)

शक्ति अवतार बुद्धादिकका है तथा आवेशावतार शुद्ध-अशुद्ध दो प्रकारका है । शुद्ध जीवमें ईश्वरका प्रवेश रहता है, वही शुद्ध आवेशावतार है । व्यासादिक इसी कोटिमें आते हैं । अशुद्धावेशमें परशुरामादिक आते हैं । सात्विक, राजस, तामस भेदसे गौण विभवावतार ३ प्रकारका है । राजस् के देवता सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी हैं । सात्विक अहंकारके देवता पालनकर्ता श्रीविष्णु हैं । तामसके देवता सृष्टिसंहारक शिव हैं आदि । अन्तर्यामीके भी दो रूप या भेद हैं - रूप और अरूप । भक्तोंके हृदयमें साकार रूपसे विराजमान रहकर आनन्द प्रदान करते हैं । जिनका साक्षात्कार श्रद्धा और विश्वासद्वारा होता है । यथा-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गीता ९)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! सर्वप्रियदर्शी ईश्वर प्राणियोंको माया द्वारा कर्मबन्धनमें कठपुतलीकी तरह भ्रमण कराते हुये सभी प्राणियोंके हृदयमें निवास करता है । परमात्मा हेयगुण रहित होनेसे निर्गुण कहलाता है तथा दिव्यगुण विशिष्ट अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वविद् होनेसे सगुण कहलाता है तथा क्षित्यङ्कुरादि कण-कणमें नित्य निरञ्जन ज्ञान और प्रकाशक रूपमें निराकार रूपसे इस तरह व्याप्त रहता है जैसे काष्ठ में अग्नि–

एक दारुगत देखिय एकू। पावक जुग सम ब्रह्म विवेकू ॥

५. **अर्चावतार**–अर्चावतार अतीव सरल है, क्योंकि वह स्वतन्त्र होते हुए भी भक्तपरतन्त्र है। शक्तिमान् होते हुए अशक्त, आप्तकाम होते हुए सकाम, चेतन होते हुए जड़वत्, रक्षक होते हुए रक्ष्य, अगोचर होते हुए दृश्य हैं। इस प्रकार जो शिव और विरञ्चि के भी स्वामी हैं, वे भक्तोंके भावानुरूप परिणत हो जाते हैं। उनके चार भेद हैं–(१) स्वयं सिद्ध, (२) व्यक्त, (३) सैद्ध, (४) मानुष।

स्वयं सिद्ध–यथा-रङ्गनाथ, वेंकटेश, वृन्दावन स्थित श्रीबांकेबिहारी, श्री अयोध्याजीमें स्थित कालेरामजी तथा श्रीहनुमान्जी (हनुमानगढ़ी) एवं ओरछाके श्रीरामराजाजी और शालग्रामजी, आदि।

व्यक्त–दिव्य-देवप्रतिष्ठापित। यथा– बदरिकाश्रम-बदरीनाथ एवं श्रीरामेश्वर, आदि।

सैद्ध–जो सिद्धोंकी प्रार्थना पर आविर्भूत तथा पूजित हो, वह सैद्ध अर्चावतार है। जैसे अयोध्यास्थ तपस्वीजीकी छावनीके श्रीगोपाललालजी, आदि।

मानुष-जो मूर्ति मनुष्यों द्वारा निर्मित होकर प्रतिष्ठापित हो वह मानुष अर्चावतार शाश्वत एवं त्रैकालिक है। इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। श्रीमद्भागवतमें अष्टधा मूर्तियोंके प्रमाण भी मिलते हैं। यथा–

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ (श्रीमद्भागवत ११/२७/१२)

१. **शिलामयी**–पाषाण विग्रह, २-काष्ठसे निर्मित मूर्ति, ३-लौहमयी मूर्ति, ४-फोटो आदि, ५-लिखी हुयी, ६-बालुकामयी, ७-मानसीमूर्ति, ८-मणिमयी मूर्ति। ये आठ प्रकारकी प्रतिमायें प्रतिष्ठापूर्वक सनातनधर्ममें सादर संपूजित हैं। उपर्युक्त परमात्मा व देवताओंके साथ उनकी शक्ति

और आयुध आदि भी विद्यमान रहते हैं, क्योंकि शक्तिके बिना शक्तिमान् का होना असम्भव है। श्रुतियोंमें इसी प्रकारकी स्तुतिका प्रायः दर्शन होता है। यथा-

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ० (यजु० अ० ३१ मं० २२)

नमस्त आयुधाय । (यजु० अ० १६ मं० १४)

भजे सशक्तिसानुजम् । (मानस)

शक्तिमान्के साथ अभेद रूपसे उनकी शक्ति एवं आयुध तथा पार्षदकी भी वन्दना की जाती है। जैसे धनुर्धारी श्रीरामजीके साथ सीताजी तथा हनुमान्जी आदि। चतुर्भुजी नारायणके साथ लक्ष्मीजी, गरुडादि। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानना चाहिये।

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे,
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्वं मुनिभ्यः परं,
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥

यही बाँकी झाँकी श्रीवैष्णवोंके लिये परमानन्ददायिनी है ॥ इति शम् ॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें पञ्चसंस्कार

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीहर्याचार्यजी महाराज)

पञ्च संस्कार के भेद–आनन्दभाष्यकार आचार्यप्रवर स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज अपने श्रीवैष्णवमताब्जभास्करमें पञ्चसंस्कारोंके विषयमें स्वयं अनुग्रह करते हैं–

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेण चापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
श्रुतिश्रुतं नाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदाः परमार्थ हेतवः ॥

अर्थात् दोनों भुजाओंमें तप्त धनुषबाण से अंकित करना, ललाटमें ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना, दासान्त शरणान्त भगवत्सम्बन्धी नामकरण होना, कर्णमें मन्त्र श्रवण करना, तुलसीकी माला या कण्ठी धारण करना; इन पंच संस्कारों द्वारा जीवका परम कल्याण होता है।

संस्कार शब्दकी निरुक्ति–पाणिनीय-व्याकरणानुसार **सम्यक् करोति इति संस्कारः** सम् उपसर्गपूर्वक डुकृञ् करणे धातुसे कर्म अर्थमें सुट्, अण् प्रत्यय एवम् आदिबृद्धि करके संस्कार शब्दकी निष्पत्ति होती है। **सम्यक् संस्कारं परिमार्जनम् करोति इति संस्कारः** । अच्छी तरह शुद्ध करना, मलिन वासनाओंके प्रभावको समाप्त करना आदि।

संस्करोति-सम्यक् विशुद्धयति इति संस्कारः । उपदेश, शिक्षा द्वारा पवित्र करना, जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त किये जाने वाले १६ कृत्य इन्द्रियोंके विषयों के ग्रहणसे मनमें उत्पन्न प्रभाव, शौच, शरीर शुद्धि, मानसी शिक्षा आदि।

पञ्च संस्कार के तात्पर्य–यद्यपि आधुनिक लोग यह कहते हुए नहीं अघाते कि अन्तर्वृत्ति प्रेम, भक्ति, आस्था से यदि परिपूर्ण है तो बाह्य कृत्रिम चिह्नोंकी क्या आवश्यकता है ? ऐसे सिरफिरे लोगोंकी आस्था, माता, पिता, गुरु, भगवान् किसीमें भी नहीं होती, वे मात्र ठिठोली करके अपनेको परिष्कृत सिद्ध करना चाहते हैं।

एक पतिव्रता स्त्री सच्चे अन्तर्मनसे पतिपरायण एवं सदाचारिणी हो, पर वह पति के जीते जी उसके सौभाग्य चिह्नोंका परित्याग कर दे तो पति अवश्य अपना अपमान समझकर रुष्ट होगा कि इसने मुझे मृत मान लिया है। मेरी जीवनसंगिनी बनकर भी अपने को विधवा मान लिया है। उसी प्रकार राज्यकर्मचारी यदि राजकीय चिह्नोंका परित्याग कर दें तो पहिचान कठिन हो जायेगी। राज्यचिह्नों द्वारा ही वे प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। नेतागण स्वदेशीय खद्दर वस्त्र धारण करनेसे देशप्रेम एवं गौरव प्राप्त करते हैं। भारत देशका गौरवस्वरूप तिरंगा झण्डा है। इस चिह्नके सम्मानमें हम

देशवासी अपना सम्मान मानते हैं और झंडेके अपमानमें अपना अपमान मानते हैं । यह झंडा देशका गौरव चिह्न है । इसी स्वरुपको प्रकट करनेके लिये श्री सम्प्रदाय (श्री रा० सं०) में श्रीरामभक्तोंको पंचसंस्कार रूपी प्रतीकों को धारण करना परमावश्यक है । इस स्वरूपका वैशिष्ट्य है कि हम सर्वतोभावेन भगवान् के हैं, साथ ही कुत्सित कार्योंमें प्रवृत्त होने पर लोग धिक्कारते हैं -अरे वाह भगतजी, सन्तजी ! क्या इस वेषका यही कार्य है ? इससे जीवनमें सुधार आता है । जीवन परिष्कृत होता है और शनैः-शनैः प्राणी धर्मात्मा हो जाता है-**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा ।**

इन पञ्च संस्कारोंमें ही शरणागतिके अंगभूत तत्त्वोंका प्रकाश विद्यमान है ।

प्रथम, नामसंस्कार–जिस साधकका भगवत्सम्बन्धी नाम नहीं होता वह शुभ कर्मोंमें निन्द्य है । वह नाम विहीन है । भगवान् के नामके साथ दासान्त एवं शरणान्त नाम अवश्य होना चाहिये । उससे पापक्षयपूर्वक प्राणी पुण्यभागी होता है । पूर्वमें प्राकृत देह सम्बन्धी नाम था, उससे मात्र संसार का तथा ॠणत्रयाधिकारियों से सम्बन्ध था-

जननी जनक बंधु सुत दारा । तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥ (रा० मा० सु० ४७)

जीव भगवान्का दास एवं (शेष) तब हुआ जव भगवान्को आत्मसमर्पण किया तभी से यह शरीर भगवान्का हो गया । उसीके अनुसार दास, शरण आदि इसका नाम भी हुआ । नाम संस्कारसे जीव सांसारिक सम्बन्धोंसे विमुक्त होता है ।

पृथिवीतत्त्वके गंधविषयका तात्पर्य परमार्थपक्षमें सांसारिक वासना है । उस वासनाओंसे मुक्त होना ही पृथिवीतत्त्वपर जय प्राप्त करना है । अतः नामसंस्कारके द्वारा गुरुदेव पृथिवीतत्त्वके गन्धविषयसे रक्षा करते हैं-

योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नामपूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभागी भवेन्नरः ॥

द्वितीय, माला कंठी संस्कार

तुलसी मालिका-धारी पुनाति भुवनत्रयम् ।
प्रणमन्ति सुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः ॥ (स्कन्दपुराण)

तुलसीकी माला या कंठी धारण करने वाला प्रणम्य है क्योंकि तुलसी धारणका तात्पर्य है- भगवत्परायण भक्त । भक्त भगवान्को अत्यन्त प्रिय है अतः शिव, इन्द्र, यमादि भी उसको प्रणाम करते हैं ।

तुलसी भगवती भगवान्की परमप्रिया हैं । इनकी स्वीकृतिके बिना श्रीराम उच्च कोटिका

भोग भी नहीं ग्रहण करते । अतः वेदत्रयी, त्रिदेव, त्रिसंध्यायें, तीनों अग्नि, तथा समस्त देवगण तुलसीमालाधारण करनेवाले मनुष्यका सदैव मङ्गल करते हैं । यथा–**त्रयो वेदास्त्रयो देवास्तिस्रः संध्यास्त्रयोऽग्नयः । सदा कुर्वन्ति माङ्गल्यं तुलसी यस्य मस्तके ।** (अगस्त्य संहिता)

तुलसी महारानी हरिवल्लभा हैं । किसी भी अवस्थामें तुलसीजी भगवान्‌को नहीं छोडतीं । अपनी मान-मर्यादा-सबका परित्याग स्वीकार कर वृक्षवत् शीतोष्ण सहना स्वीकार किया है । सांसारिक वासना को त्याग कर जीवन को भगवद्भक्तिपरक बनाया है । अतः इनके संयोगके बिना भगवान् कोई भोज्य या भूषण अथवा सत्कार ग्रहण नहीं करते ।

हमारी वृत्तियाँ उद्दीप्त होकर श्रीरामपरक हो जायें, अतः श्रीवैष्णव भक्त इनको विविध रूपमें धारण करते हैं । भगवान्‌का भोग लगनेमें तुलसीके बिना अन्न, जल पवित्र नहीं माने जाते । कंठीको कण्ठमें धारण करनेका तात्पर्य है कि रसनासे गृहीत पदार्थ कण्ठसे होकर अन्दर जाते समय कंठीकी तुलसीसे वे संस्पृष्ट हो जायें, जिससे उसके रससे प्रवर्तित इंद्रियाँ भी तुलसीके समान अनन्यभावसे भगवत्परायण हो जायें । पश्चात् भक्तकी सेवा-निष्ठा दृढ़ हो जाय । प्राकृत रसोंसे परिपोषित इन्द्रियाँ जब भगवत्परक होंगी तव यह जीवन रस विषयके विकारोंसे सुरक्षित हो जायेगा । जो इन्द्रियाँ प्राकृत आहार द्वारा दुःखदायिनी हैं वे कण्ठी के सम्बन्धसे भगवद्भजनमें लगाकर भक्ति, मुक्ति प्रदायिनी होंगी । हमारी सर्वाङ्ग जीवन वृत्तियाँ भगवत्परक हो जायें इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है ?

ॐ यो लोकपावनीं तुलसीकाष्ठजां मालिकां कंठे धारयति,
स जीवन् मुक्तो भवति । (रामोपनिषद्)

मुक्तिविधायिनी पराभक्ति तथा भगवान्‌का सान्निध्य तुलसी धारण करनेवाला भक्त प्राप्त करता है । आधुनिक वैज्ञानिक भी यह पूर्ण रूपसे मानते हैं कि तुलसीके रस, पत्ते, छाल, डंठल आदिमें वह शक्ति विद्यमान है जो (एण्टी बैटी) जहरीले तत्त्वोंका सद्यः शमन करती है ।

वैद्य लोग तो तुलसीको प्राणदायिनी शक्ति मानते हैं । इसे विविध असाध्य रोगोंमें विशेष गुणकारी मानते हैं । वैद्यक पुस्तकोंमें तुलसीके २६४ गुणोंका विशद विवेचन बड़े ही समारोह पूर्वक उपस्थापित किया गया है ।

एक अंग्रेज विद्वान् लिखता है– भारतमें श्री तुलसीका पौधा सारे हिन्दुओंका परीक्षक है, जो माताकी तरह बिना बताये आँगनमें पोषण किया करता है । अतः भारतीय बड़े चतुर हैं जो तुलसीको द्वारपर, आँगनमें, गमलेमें, वाटिकामें, गलेमें मालाके रूपमें, हाथमें, भूषणके रूपमें कानमें सर्वदा स्थान देते हैं । (सो० ख्रू० शेवर)